भारतीय ज्ञानपरम्परा आधारित

संस्कृति बोधमाला १०

प्रकाशक : विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र

विद्या भारती
अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान
हमारा लक्ष्य
इस प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करना है जिसके द्वारा ऐसी युवा-पीढ़ी का निर्माण हो सके जो हिन्दुत्वनिष्ठ एवं राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत हो, शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो तथा जो जीवन की वर्तमान चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सके और उसका जीवन ग्रामों वनों, गिरिकन्दराओं एवं झुग्गी-झोपड़ियों में निवास करने वाले दीन-दुःखी अभावग्रस्त अपने बान्धवों को सामाजिक कुरीतियों, शोषण एवं अन्याय से मुक्त कराकर राष्ट्र जीवन को समरस, सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए समर्पित हो।

ॐ

मंगलाचरण

मन को अपने अवध बनाएँ, सिया राम की छवि बैठाएँ।
उनसा उज्ज्वल चरित बनाएँ, राम राज्य भारत में लाएँ।।

राष्ट्र गीत - वन्दे मातरम्

प्रस्तुत राष्ट्रगीत भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (चटर्जी) द्वारा रचित 'आनंदमठ' पुस्तक से उद्धृत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यही गीत क्रांतिकारियों का प्रेरणा मंत्र रहा है।

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्,
शस्य श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम् ॥१॥
शुभ्र-ज्योत्स्नां-पुलकित-यामिनीम्,
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्,
सुहासिनीं, सुमधुर-भाषिणीम्,
सुखदां, वरदां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥२॥
कोटि-कोटि-कंठ कल-कल-निनाद-कराले,
कोटि-कोटि-भुजैर्धृत-खर-करवाले,
अबला केनो माँ एतो बले,
बहुबल-धारिणीं, नमामि तारिणीम्,
रिपुदल-वारिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥३॥
तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे, बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे। वन्दे मातरम् ॥४॥
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणीम्,
कमला कमल-दल-विहारिणीम्,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥५॥
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्,
धरणीं भरिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥६॥

भारत माता की जय।

प्रकाशकीय

परमोच्च सत्य का सन्धान, आख्यान और व्यवहार संस्कृति है। आसेतुहिमाचल, इस भूमि पर अपनी सारस्वत साधना से इस सत्य का साक्षात् दर्शन कर हमारे पूर्वज मनीषियों ने ऋषि पद प्राप्त किया। वेद एवं उपनिषद् आदि वाङ्मय के रूप में उन्होंने इसकी अभिव्यक्ति की। इस पृथ्वीतल एवं समस्त ब्रह्माण्ड की प्राकृतिक शक्तियों की देवरूप में मनोरम स्तुति तथा जीवन के गूढ़ रहस्यों का, विविध आख्यान-उपाख्यानों के माध्यम से, तात्त्विक कथन आदि ने इसके स्वरूप को गढ़ा। इनके आधार पर जिन जीवनमूल्यों (दर्शन), जीवन व्यवहार (धर्म) का विकास हुआ उसे भारतीय संस्कृति के नाम से अभिहित किया गया। 'सत्य संकल्प प्रभु' राम, गीता के आख्याता श्रीकृष्ण एवं कण-कण में रमे शिवशंकर 'संस्कृति पुरुष' बने।

सत्य शाश्वत है, कालजयी है, इसलिए उसका प्रवाह चिरन्तन होता है। सत्य को वहन करने वाली संस्कृति की गति कभी मृदु, मंद, मंथर उर्मियों से युक्त होती है तो आवश्यकता होने पर इसमें उत्ताल तरंगें भी उठती हैं। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ने इसे विविधावर्णी बनाया। श्रीमद् शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य प्रभृत्ति तत्त्ववेत्ताओं के दार्शनिक सूत्रों के साथ उस तत्त्व के रसरूप (रसो वै सः) के प्रति भक्तिपरक स्तोत्रों ने इसमें माधुर्य का संयोग किया। पुराण साहित्य तो भक्ति का अगाध समुद्र ही है। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता- इस प्रस्थानत्रयी में श्रीमद्भागवत जुड़कर प्रस्थान चतुष्टय हुआ, जिसने मस्तिक और हृदय-तत्त्वचिन्तन और भक्ति की समन्वित धारा को गति प्रदान की। पूरे इतिहास फलक पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि लम्बे संघर्षकाल में- प्रारंभ से अन्त तक- इन्हीं ग्रन्थों में ग्रथित तत्त्वदर्शन का युगीन, समकालीन व्याख्यान हमें प्रेरणा देता रहा है।

देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भारतभूमि, राष्ट्र का भारतमाता के रूप में चिरंतन दर्शन एक ओर, तो दूसरी ओर 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर सम्पूर्ण जगती के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव, भारतीय संस्कृति का मूल है। 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' (महाभारत), 'सबार ऊपर मानुष सत्य, ता ऊपर किछु नाहीं (चण्डीदास) कहकर मनुष्य मात्र को इस संस्कृति ने अपने केन्द्र में रखा तो जीवमात्र और उससे भी आगे बढ़कर चेतन के साथ जड़ को भी जोड़कर यह संस्कृति अनन्त विस्तार पाती है। छोटे से छोटा (अणोरणीयान्) और बड़े से बड़ा (महतो महीयान्), सब कुछ को यह अपनी परिधि में समाहित कर लेती है। आध्यात्मिकता, सांसारिकता, शाश्वत धर्म, सामयिक कर्त्तव्य, सुरज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वय, पुरुषार्थ चतुष्टय, व्यवहार के स्तर पर आन्तरिक शुचिता और बाह्यशुद्धि आदि विचार इसकी श्रेष्ठता है। इस सबका आख्यान करने वाले रामायण, महाभारत हमारे 'संस्कृति ग्रन्थ' हैं।

संस्कृति का यह प्रवाह अबाध व निरन्तर बना रहे, इसकी आवश्यकता आज बड़ी तीव्रता से अनुभव में आती है। यह नई पीढ़ी तक पहुँचे, नई पीढ़ी को इसका सम्यक, सुष्ठु और सर्वाङ्ग बोध हो, इस उद्देश्य से विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान इस संस्कृति बोधमाला का प्रकाशन कर रहा है। भावीपीढ़ी 'संस्कृति दूत' बनकर मानवता की सेवा कर सकें, दिशा दे सकें तो हम कृतकार्य होंगे।

संस्कृति बोधमाला को तैयार करने के लिए विद्या भारती के अनेक कार्यकर्ताओं ने सब प्रकार का अनवरत परिश्रम किया है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इसमें उपयोग किए गए चित्रों के रचनाकार निश्चय ही हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में इसमें सहयोग मिला, उनका विनम्र आभार...

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	**हमारी भारतमाता** सप्तपुरियाँ, शक्तिपीठ।	५
२.	**हमारा भारत राष्ट्र** सांस्कृतिक राष्ट्र, अखण्ड भारत, राष्ट्र की सांस्कृतिक अवधारणा, सामाजिक समरसता।	९
३.	**हमारी भारतीय संस्कृति** संस्कारों का महत्त्व, श्रीरामचरितमानस प्रसंग, श्रीमद्भगवद्गीता, हमारी परम्पराओं के वैज्ञानिक आधार, श्रीगुरुग्रन्थ साहिब।	१६
४.	**हमारी परिवार व्यवस्था** भारतीय परिवार व्यवस्था, सद्गुण विकास, शब्द भण्डार, गीत – नव रचना, कबीर दोहावली, स्वदेशी विचार अभियान।	२१
५.	**हमारी ज्ञान परम्परा** प्राचीन गुरुकुल शिक्षा, पर्यावरण एवं प्रकृति, एकात्ममानव दर्शन, भारतीय समाज में नारी का स्थान।	२६
६.	**हमारी वैज्ञानिक परम्परा** भारतीय विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा, भारतीय गणित, भारतीय विद्याएँ, भारतीय कालगणना, भारतीय ज्योतिष।	३१
७.	**हमारा गौरवशाली अतीत** वन्देमातरम् की गाथा, भारत का विभाजन : एक त्रासदी, लाचित बरफूकन, राजपूताना साम्राज्य का परिचय।	३८
८.	**हमारी संस्कृति का विश्व संचार** विश्वव्यापिनी भारतीय संस्कृति, भारत के आयुर्वेद की विश्व को देन, वैदिक गणित, योग, भारतीय संगीत की देन।	४४

---

१. हमारी भारतमाता

oUn tuuh Hkkjr èkj.kh] 'kL; ';keyk l;kjhA
uekue% lc tx dh tuuh] dkfV dkfV l r okjhAA

सप्तपुरियाँ

भारतीय जीवन में चार पुरुषार्थों का विशेष महत्त्व है। पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष (मनुष्य) होने का अर्थ। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति अर्थात् धर्मपूर्वक अर्थार्जन करते हुए अपनी जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं (कामनाओं) की पूर्ति को मानव जीवन का लक्ष्य कहा जाता है। इन पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु मनुष्य अनेक प्रकार के सांस्कृतिक-आध्यात्मिक कार्य करता है। जीवन के अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्रदान करने वाली इन सप्तपुरियों का संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है -

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्चि अवंतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

१. अयोध्या -

सूर्यवंश के प्रथम शासक मनु द्वारा पवित्र सरयू तट पर बसाई गई भगवान् राम की जन्मस्थली अयोध्या वर्तमान में उत्तर प्रदेश में स्थित है। प्राचीनकाल में यह कोसल तथा अवध के नाम से प्रसिद्ध थी।

श्रीराम जन्मभूमि होने से अयोध्या का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। श्रीरामचरितमानस में प्रभु श्रीराम कहते हैं -

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा ॥

२. मथुरा -

मथुरा का प्राचीन नाम मधुरा या मधुवन था। यह श्रीकृष्ण की जन्मभूमि है। यहीं श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया था। यह धर्मनगरी सूर्यपुत्री यमुना के तट पर उत्तर प्रदेश में है। लम्बे समय से मथुरा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का केन्द्र रही है। धर्म, संस्कृति, दर्शन, कला एवं साहित्य के सृजन तथा विकास में मथुरा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाकवि सूरदास, स्वामी हरिदास, स्वामी दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द, कवि रसखान आदि का सम्बन्ध इस नगरी से रहा है।

३. मायापुरी (हरिद्वार) -

उत्तराखण्ड राज्य में स्थित हरिद्वार नामक धर्मनगरी का प्राचीन नाम माया था। मायापुरी को गंगाद्वार भी कहा जाता है। यहीं से गंगा मैदानी भाग में आती है। प्रजापति दक्ष की यज्ञ वेदी-जहाँ सती ने अपने पति शिव के अपमान से दुखी होकर यज्ञ की अग्नि में प्रवेश किया था, यहीं स्थित है। यहाँ गंगा-आरती श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र है। चार कुम्भ स्थलों में से यह एक है।

४. काशी –

मान्यतानुसार काशी शिव जी के त्रिशूल पर बसी है। वरुणा और असी नदियों के संगम पर स्थित होने से इसे वाराणसी भी कहते हैं। उत्तर प्रदेश में स्थित इस नगरी को धर्म, संस्कृति एवं विद्या की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। महामना मदन मोहन मालवीय द्वारा स्थापित हिन्दू विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विद्यापीठ सहित अनेक गौरवपूर्ण शिक्षा एवं संस्कृति के संस्थान यहाँ स्थित हैं। तुलसीदास, कबीर एवं रविदास जैसे कवि-समाजसुधारक सन्तों का सम्बन्ध भी काशी से रहा है। संकटकाल में राजा हरिश्चन्द्र को भी इस नगरी ने आश्रय प्रदान किया था। गंगा तट पर बसी यह पवित्र धार्मिक नगरी देशी-विदेशी श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र है। यहीं द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक भगवान विश्वनाथ का मन्दिर श्रद्धा केन्द्र के रूप में स्थित है।

५. काञ्चिपुरम् –

तमिलनाडु राज्य में वेगवती एवं पलार नदी के तट पर बसा यह प्रसिद्ध नगर प्राचीन चोल व पल्लव राजाओं की राजधानी था। इसके धार्मिक-आध्यात्मिक महत्त्व के कारण इसे दक्षिण भारत की 'काशी' कहा जाता है। सनातन धर्म की मान्यतानुसार यह हरिहरात्मक क्षेत्र है अर्थात् वैष्णव व शैव, दोनों की श्रद्धा का केन्द्र है। कामाक्षी देवी (माँ पार्वती) का प्रसिद्ध मन्दिर और काञ्चि-कामकोटि पीठ यहीं स्थित है। यह नगर वस्त्र उद्योग, विशेषकर साड़ियों के लिए प्रसिद्ध है, जिन्हें 'काञ्जीवरम् साड़ी' कहा जाता है। काञ्जीवरम् काञ्चिपुरम् का ही उच्चारण भेद है। काञ्चिपुरम् और इसके आसपास १२६ भव्य मन्दिर हैं। वरदराज पेरूमल मन्दिर, एकाम्बरनाथ मन्दिर, कच्छपेश्वर मन्दिर, कैलाशनाथ मन्दिर प्रमुख रूप से शोभायमान हैं।

दक्षिण की काशी-काञ्चिपुरम्

६. अवन्तिका (उज्जैन) –

मध्य प्रदेश में शिप्रा नदी के किनारे बसी यह धर्मनगरी अत्यन्त प्राचीन है। यह विक्रमादित्य की राजधानी थी। इसे कालिदास की नगरी के रूप में भी जानते हैं। इसका वर्तमान नाम उज्जैन है। इस नगर के राजा भगवान् महाकाल हैं। विक्रम संवत् का शुभारम्भ इसी नगर से हुआ। प्राचीन काल से यह कालगणना का प्रमुख केन्द्र रहा है। प्रति बारह वर्ष में यहाँ कुम्भ मेला (सिंहस्थ) लगता है।

७. द्वारका –

गुजरात राज्य में स्थित यह तीर्थ हिन्दुओं के सर्वाधिक पवित्र तीर्थों में से एक तीर्थ, चार धामों में से एक धाम तथा सप्तपुरियों में से एक पुरी है। भारत के पश्चिम में समुद्र किनारे स्थित यह श्रीकृष्ण की कर्मभूमि है जिसे स्वयं श्रीकृष्ण ने बसाया था। यहीं शारदा मठ भी स्थित है। द्वारका दर्शन के बाद बेट द्वारका (भेंट द्वारका) दर्शन महत्त्वपूर्ण माना गया है। कैलासकुञ्ज, रणछोड़ मन्दिर, निष्पाप कुण्ड, गोपी तालाब, प्रभास तीर्थ आदि समीपवर्ती प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। इस नगर के पुरातात्त्विक प्रमाण समुद्र के तल में प्राप्त हुए हैं।

शक्तिपीठ

जगजननी भारत माता के कण-कण शक्ति पुंज चैतन्य।
फिर भी होती शक्तिपीठ पर जाग्रत ऊर्जा और अनन्य।
शक्ति-भक्ति के धाम सदा राष्ट्रीय एकता परिषोषक,
महिमा युगों-युगों से जिनकी शीश नवाता जग हो धन्य॥

इससे पहले हमने पच्चीस शक्तिपीठों के नाम व स्थान जाने शेष शक्तिपीठ इस प्रकार हैं –

उत्तर प्रदेश में स्थित शक्तिपीठ

१.	वृन्दावन शक्तिपीठ	भूतेश्वर के पास चामुण्डा मन्दिर
२.	वाराणसी शक्तिपीठ	काशी के मीरघाट पर विशालाक्षी गौरी मन्दिर
३.	प्रयाग शक्तिपीठ	अक्षयवट के पास/अलोपी माता/ललिता देवी मन्दिर (मतान्तर से)
४.	पंचसागर शक्तिपीठ	वाराणसी

राजस्थान में स्थित शक्तिपीठ

४.	मणिबन्ध शक्तिपीठ	पुष्कर का गायत्री मन्दिर
५.	विराट शक्तिपीठ	जयपुर से ६४ कि.मी. उत्तर में भीम गुफा में

गुजरात में स्थित शक्तिपीठ

६.	प्रभास शक्तिपीठ	गिरनार का अम्बाजी मन्दिर

आन्ध्र प्रदेश में स्थित शक्तिपीठ

७.	गोदावरी तट शक्तिपीठ	गोदावरी के पार कुम्बूर में कोटितीर्थ
८.	श्रीशैल शक्तिपीठ	मल्लिकार्जुन से ४ कि.मी. पश्चिम में भ्रमराम्बा

प्रभास शक्तिपीठ, गिरनार

महाराष्ट्र में स्थित शक्तिपीठ

९.	करवीर शक्तिपीठ	कोल्हापुर का महालक्ष्मी मन्दिर
१०.	नासिक शक्तिपीठ	पञ्चवटी का भद्रकाली मन्दिर

कश्मीर में स्थित शक्तिपीठ

११.	श्रीपर्वत शक्तिपीठ	लद्दाख में / मतान्तर से असम सिलचर के पास
१२.	कश्मीर शक्तिपीठ	अमरनाथ गुफा के अन्दर पार्वती पीठ

ओडिशा में स्थित शक्तिपीठ

१३.	उत्कल शक्तिपीठ	जगन्नाथ मन्दिर के प्रांगण में विमला देवी

हिमाचल में स्थित शक्तिपीठ

१४.	ज्वालामुखी शक्तिपीठ	कांगड़ा के कालीघर पर्वत की तलहटी में

मेघालय में स्थित शक्तिपीठ

१५. जयन्ती शक्तिपीठ — शिलांग से ५३ कि.मी. जयन्तिया पर्वत पर

असम में स्थित शक्तिपीठ

१६. कामगिरि शक्तिपीठ — गुवाहाटी के कामगिरि पर्वत पर

पंजाब में स्थित शक्तिपीठ

१७. जालन्धर शक्तिपीठ — जालन्धर का विश्वमुखी देवी मन्दिर

त्रिपुरा में स्थित शक्तिपीठ

१८. त्रिपुरसुन्दरी शक्तिपीठ — राधाकिशोर ग्राम से ३ कि.मी. दक्षिण-पश्चिम

हरियाणा में स्थित शक्तिपीठ

१९. कुरुक्षेत्र शक्तिपीठ — कुरुक्षेत्र का भद्रकाली मन्दिर

भद्रकाली शक्तिपीठ, कुरुक्षेत्र

मध्यप्रदेश में स्थित शक्तिपीठ

२०. काल माधव शक्तिपीठ — अमरकण्टक

२१. हरसिद्धि शक्तिपीठ — उज्जैन

२२. शारदा देवी शक्तिपीठ — मैहर

नेपाल में स्थित शक्तिपीठ

२३. गण्डकी शक्तिपीठ — गण्डकी नदी के उद्‌गम पर

२४. नेपाल शक्तिपीठ — पशुपतिनाथ के पास बागमती नदी के तट पर गुह्येश्वरी मन्दिर

वर्तमान में पाकिस्तान में स्थित शक्तिपीठ

२५. हिंगुला शक्तिपीठ — बलूचिस्तान के हिंगलाज में

वर्तमान में श्रीलंका में स्थित शक्तिपीठ

२६. लंका शक्तिपीठ — श्रीलंका में

वर्तमान में तिब्बत में स्थित शक्तिपीठ

२७. मानस शक्तिपीठ — मानसरोवर के तट पर

ज्वालामुखी शक्तिपीठ, कांगड़ा

शारदा देवी शक्तिपीठ, मैहर

कामगिरि शक्तिपीठ, असम

२. हमारा भारत राष्ट्र

g v[k.M jk"V i#"k vfer 'kfDrèkkjhA
dkfV&dkfV d.B dj oUnuk rEgkjhAA

सांस्कृतिक राष्ट्र

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

अर्थात् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का वर्ष (देश) भारत कहलाता है तथा यहाँ भारती- सन्तति निवास करती है।

भारत की भौगोलिक सीमा -

भारत उत्तरी गोलार्द्ध में ७ डिग्री और ३७ डिग्री अक्षांश तथा ६२ डिग्री और ९८ डिग्री देशान्तर के बीच स्थित है। कश्मीर से लंका तक इसके स्थान लगभग ३०५७ किलोमीटर लम्बा और काठियावाड़ से असम तक २९९१ किलोमीटर चौड़ा है।

'भारत' और 'भारतवर्ष' के नामकरण का आधार

भारत के नामकरण के अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक आधार मिलते हैं -

१. एक आधार है दौष्यन्त भरत का, अर्थात् दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर अपने देश का नाम भारत पड़ा।
२. मत्स्यपुराण के अनुसार प्रजा के जन्म देने और उनका भरण- पोषण करने के कारण जिस भू-भाग पर मनु की व्यवस्था प्रचलित थी, उसे भारत कहा गया।
३. श्रीमद्भागवत में वर्णित है कि ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र व श्रेष्ठ गुण वाले जड़भरत के नाम पर इस राष्ट्र का नाम भारत पड़ा।
४. ज्ञानमण्डित और शक्तिशाली भरत जाति के नाम पर भारत नाम अस्तित्व में आया। आचार्य राजबली पाण्डे का मत है कि नगरों व छोटे प्रान्तों के नाम किसी व्यक्ति के नाम पर रखते हैं किन्तु देशों के नाम जातियों व निवासियों को आधार बनाकर निर्धारित किये जाते हैं। इस तर्क के आलोक में भरत जाति के नाम पर इस देश का नाम - भारत पड़ना समीचीन प्रतीत होता है।

वर्ष का अर्थ है - देश। पहले यह राष्ट्र भारतदेश था, कालान्तर में परिष्कृत होकर भारतवर्ष हो गया। इसे हिन्दुस्थान नाम ईरानियों ने दिया। एशिया के मुस्लिम देश इसको हिन्दुस्तान कहने लगे। इण्डिया नाम यूनानियों का दिया हुआ है। शेन-तु एवं इन-तु, नाम चीन के लोगों ने दिया है। सिंहली में भारत के लिये जम्बूद्वीप शब्द का व्यवहार होता है।

भागवतपुराण में भारतवर्ष के लिये अजनाभवर्ष का नाम आया है। पुराणकथाओं में भारत का नाम आर्यावर्त एवं भरतखण्ड के रूप में वर्णित है।

भारत गौरवशाली राष्ट्र है। यह वह राष्ट्र है जहाँ भूमि को माता माना गया है। अथर्ववेद कहता है 'माता भूमिः

पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। मातृभूमि की अवधारणा भारतीय है जो यूरोपीय देशों में नहीं है। मातृभूमि के लिए भारतीयों जैसा आत्मीय भाव उनमें नहीं है।

भारत का मुकुट हिमालय है। यहाँ अमृत-प्रवाहिनी गंगा-यमुना- सरस्वती-गोदावरी-नर्मदा-सिन्धु जैसी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। यह राष्ट्र प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण है। प्राकृतिक विविधताओं से परिपूर्ण भारत राष्ट्र विविधता में एकता का आदर्श है। विश्व में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ छः ऋतुएँ होती हैं। इन्द्र के एक प्रश्न पर आचार्य बृहस्पति ने कहा कि देवराज! धरती पर एक ऐसा देश है, जो सुरम्यता में स्वर्ग के समान है, स्वर्ग की शोभा को भी मात कर देने वाला वह देश है-भारत। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी भारत के सौन्दर्य का काव्यमय वर्णन किया है -

जय जय प्यारा भारत देश, स्वर्णिम शीशफूल पृथ्वी का,
सुललित प्रकृति नदी का टीका, ज्यों निशिकारा केश।

अर्थात् जिस प्रकार सौभाग्यवती स्त्री अपने मस्तक पर शिरीष पुष्प धर कर शोभा पाती है, वैसे ही पृथ्वी भारतवर्ष से शोभा पाती है।

भारतवर्ष ईश्वरीय अवतारों की क्रीड़ास्थली है। महापुरुषों की भूमि है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर श्रीकृष्ण की लीलास्थली भारतभूमि है। बुद्ध, महावीर, दयानन्द सरस्वती, शंकराचार्य, विवेकानन्द, महात्मागाँधी यहीं पैदा हुए। शिवाजी, राणा, बप्पा रावल, लाचित बड़फूकन और वीर कट्टैबोम्मन, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, लक्ष्मीबाई की धरती यही है। कबीर-सूर-तुलसी-रविदास-तिरुवल्लुवर ने कवित्व की कीर्ति यहीं पायी। 'वेद' यहीं रचे गये। रामायण और महाभारत महाकाव्यों की सृष्टि भूमि यही है। पाणिनि और भरतमुनि ने विश्व को व्याकरण और नाट्यशास्त्र देकर भारत का गौरव बढ़ाया है। दर्शन, साहित्य, गणित, आयुर्वेद, विज्ञान और कला भारत की कोख से जन्मी हैं। ऐसे अपने राष्ट्र भारतवर्ष पर किस भारतीय को गर्व नहीं होगा? भारतीय संस्कृति की अस्मिता पर किसे गौरव की अनुभूति नहीं होगी?

अखण्ड भारत

स्वतंत्रता दिवस व गणतंत्र दिवस पर हम सब भारत की एकता और अखंडता की शपथ लेते हैं। विविधता से भरे हुए हमारे देश में भाषा, वेश-भूषा, परम्पराएँ अलग-अलग हैं। ऋतुओं में भी विविधता है, कहीं अत्यधिक ठंड है तो कहीं अत्यधिक गर्मी, कहीं खूब वर्षा तो कहीं मरुस्थल, कहीं सागर का किनारा, कहीं नदियों के कछार तो कहीं पर्वतों की अनवरत शृंखला। प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त यह देश विविध प्रकार की वनस्पतियों और भूगर्भ स्थित खनिज सम्पदा से भरपूर है, इसीलिए तो इसे सुजलां सुफलां कहा गया है। इतनी विविधताओं के बाद भी सांस्कृतिक दृष्टि से हमारा देश एक है, एक रहा है, और रहेगा। इसकी विविधता ही इसकी सुंदरता है।

अखण्ड भारत

ऐसा सुन्दर देश हर किसी को लुभाता है। कुछ आतताइयों को भी यह भा गया और उन्होंने इस पर आक्रमण किया। कुछ क्षति पहुँचाकर यहीं कालकवलित हो गए तो कुछ इसे निरन्तर नुकसान पहुँचाते रहे। अनेक विचारधाराएँ बाहर से आईं। हमने 'अतिथि देवो भव' की अपनी संस्कृति के अनुरूप उनका स्वागत किया। ''एकम् सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'' को ध्यान में रखकर उन्हें अपने विचारों के प्रचार-प्रसार का अवसर दिया और सहयोग भी किया। जो विचार हमारी उदात्त संस्कृति में घुल गए वे यहीं के हो गये, उन्होंने हमें अपना लिया, पर जो विखण्डन की योजना से, संस्कृति को क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से, छद्म वेश धरकर आए, वे हमें विखण्डित करने में सफल हुए। हमारी उदात्त संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव रखकर दिग्-दिगन्त तक विस्तारित हुई थी, कालान्तर में कुत्सित प्रयासों से खण्डित होती गई। जिस भूभाग में यह संस्कृति क्षतिग्रस्त हुई वह भूभाग भौगोलिक रूप से हमसे अलग हो कर अलग देश बन गया। विशाल देश खण्डित हो गया।

१९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया और भारत का बहुत सा भाग अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया जिसे आज अक्साई चीन कहा जाता है।

बृहत्तर भारत के अलग-अलग समय में अलग-अलग कारणों से टुकड़े होते गए। जिस भाग में हिन्दू अल्पमत में आया कालान्तर में वह भाग भारत से अलग होता गया। परन्तु हम आशावान हैं कि समय का चक्र घूमेगा, परिस्थितियाँ बदलेंगी, हमारी अक्षय संस्कृति, उदात्त संस्कृति और विचारों के बल पर सारे विश्व का मार्गदर्शन तथा नेतृत्व करने वाले देश के रूप में खड़े होंगे और इन अलग हुए भागों को स्नेहपूर्वक फिर से अपने साथ मिलाकर अखण्ड भारत पुनः खड़ा करेंगे।

राष्ट्र हम सबके लिए श्रद्धेय जीवन्त-सत्ता है। राष्ट्र सर्वोपरि है। वह भारतमाता है। राष्ट्र की अखण्डता का एकमेव मन्त्र है, भारतभूमि के प्रति ''मातृभूमि'' का आग्रही भाव।

भारत दुनिया का प्राचीनतम राष्ट्र है। भारत का अन्तर्मन त्याग, बलिदान और परमसत्य की खोज से विराट हुआ है। सृष्टि के कण-कण में भारत ने देवत्व देखा। भारत का व्यक्तित्व त्याग, बलिदान, पौरुष, पराक्रम और संन्यास में ही खिला है। राष्ट्र के कर्म, व्यक्तियों के कर्म में जुड़ते हैं। सनातन धारा उसे ठेलती है। व्यक्ति कुछ का कुछ हो जाता है। इसी चमत्कार और रहस्य को भारत ने भाग्य कहा और सृष्टि की सम्पूर्ण क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, अवनि-अम्बर के सरोकारों तथा ऊर्जा के अनन्त आयामों के महायोग को भारत ने भगवान् की संज्ञा दी। भगवान् में भगवा की ही परिपूर्णता है। भगवा धारा है। भगवान् समुद्र है। संसार द्वन्द्व है। द्वन्द्व के पार की यात्रा भगवा है, यात्रा की लब्धि भगवान् है।

राष्ट्र की सांस्कृतिक अवधारणा

भारतीय शब्दों का अंग्रेजी में अथवा अंग्रेजी शब्दों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद करते समय भंयकर भूलें होती हैं। साहित्यिक एवं शास्त्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक शब्द का गठन ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि के परिणामस्वरूप होता है। अंग्रेज लोग जब भारत आये तो उन्होंने अपने यहाँ की पृष्ठभूमि के प्रकाश में भारत को समझने का प्रयास किया। यह स्वाभाविक ही था। भारत में प्रचलित शब्दावली, जो यहाँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विकसित हुई, अंग्रेजों को उसे समझ पाना सम्भव नहीं था। इस कारण उन्होंने अपनी संकल्पना के अनुरूप यहाँ के शब्दों का भाषान्तर किया। उदाहरणस्वरूप 'राष्ट्र' शब्द को ही लें। अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'नेशन' किया गया। इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मूलतः भिन्न है। यूरोप में 'नेशन' एवं राज्य समानार्थी हैं। भारत में राष्ट्र और राज्य शब्दों के अर्थ एवं भाव बिलकुल भिन्न हैं। राज्य एक राजनैतिक इकाई है, जब कि राष्ट्र एक सांस्कृतिक अवधारणा है।

पश्चिमी जगत में राज्य (स्टेट) अर्थात् नेशन का जन्म 'सामाजिक समझौते के सिद्धान्त (सोशल कान्ट्रेक्ट थ्योरी)' के आधार पर हुआ है। व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले नहीं कर सकता। एक-दूसरे की सहायता एवं सहयोग से ही जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होना सम्भव है, इसलिए सबको मिलकर एक दूसरे का सहयोग करना चाहिए। इस समझौते के परिणामस्वरूप ही वहाँ समुदाय, समाज, राज्य एवं नेशन आदि संस्थाओं का निर्माण एवं विकास हुआ। वहाँ विभिन्न समुदायों में संघर्ष हुए। उन्होंने अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिए। इन राज्यों को ही 'नेशन' की मान्यता मिल गई। संयुक्त राष्ट्र संघ (यूनाइटड नेशन्स आर्गेनाइजेशन) का जन्म भी इसी अवधारणा में से हुआ है।

भारत में 'राष्ट्र' का जन्म सामाजिक समझौते के सिद्धान्त के आधार पर नहीं हुआ है। यह सम्भव है कि आरम्भ में व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति परस्पर सहयोग से करने के उद्देश्य से समुदायों का निर्माण हुआ हो। किन्तु भारतीय जनमानस ने व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति तक अपने को सीमित नहीं रखा। चिन्तन आरम्भ हो गया। यह सृष्टि क्या है? इसका रचनाकार कौन है? मनुष्य जीवन क्या है? मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है? जीव-जगत, जड़-चेतन आदि का परस्पर सम्बन्ध क्या है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु खोज प्रारम्भ की। खोजकर्ता अर्थात् ऋषि-मुनियों की अखण्ड साधना के फलस्वरूप प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में एवं भौतिक जगत के परे अदृश्य सत्य के समीप पहुँचने में सफलता प्राप्त की। परिणामत: जीवन के आदर्श स्थापित हुए। उन समान आदर्शों के लिए जीवन यापन करने वाले मानव समूह का विकास हुआ। कालान्तर में इस मानव समूह को ही 'राष्ट्र' की संज्ञा प्राप्त हुई। यह है भारत में प्रयुक्त 'राष्ट्र' शब्द के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि। राष्ट्र निर्माण के सम्बन्ध में अथर्ववेद में इसी भाव का एक मन्त्र इस प्रकार है-

भद्रं इच्छन्त ऋषय: स्वर्विद:
तपो दीक्षां उपसेदु: अग्रे।
ततो राष्ट्रं बलं ओजश्च जातम्।
तस्मै देवा उपसन्नमन्तु॥ अथर्व॰ 19-41-1

''आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के आरम्भ में दीक्षा लेकर तप किया, उससे राष्ट्र का निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज प्रगट हुआ। इसलिए सब विबुध इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें।''

राष्ट्र के लिए प्रथम अपरिहार्य आवश्यकता एक भूखण्ड है जो यथासम्भव प्राकृतिक सीमाओं से आबद्ध हो तथा एक राष्ट्र के रहने और वृद्धि और समृद्धि के लिए आधार रूप में काम आये। द्वितीय आवश्यकता उस विशिष्ट भू प्रदेश में रहने वाले समाज की है जो उसके प्रति मातृभूमि के रूप में प्रेम एवं पूज्य भाव रखे अर्थात् वह समाज उस भूमि के पुत्र रूप में स्वयं को अनुभव करे। इस दृष्टि से भारतवर्ष राष्ट्र निर्माण की आधार भूमि रही। ऋषियों ने प्रार्थना की -

''सा नो भूमि: त्विषिं बलं राष्ट्रे दयातूत्तमे

-अथर्व 12-1-8

''यह हमारी मातृभूमि हमारे इस राष्ट्र में तेज तथा बल को धारणकर उसे बढ़ाए।''

विष्णु पुराण में इस आशय का एक सुन्दर श्लोक है –

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

''पृथ्वी का वह भूभाग जो समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में स्थित है, वह भारतवर्ष कहलाता है तथा उसकी सन्तानों को भारतीय कहते हैं।''

यह भारतभूमि जो अनन्त काल से हमारी पावन भारत माता है, इसका नाम मात्र हमारे हृदयों को शुद्ध, सात्विक भक्ति से आपूर्ण कर देता है। इस भूमि की पूजा हमारे सभी सन्त-महात्माओं ने मातृभूमि, धर्मभूमि, कर्मभूमि एवं पुण्यभूमि के रूप में की है। यही वास्तव में देवभूमि और मोक्षभूमि है। आसेतु हिमाचल निवास करने वाला हिन्दू समाज अपनी इस मातृभूमि के प्रति भक्ति भाव रखता है और इस पर विपत्ति आने पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर रहता है। उनके बलिदानों से इस भूमि का कण-कण पूज्य हो गया है। इस समाज में जीवन के आदर्श, संस्कृति, भावनाएं, विश्वास एवं परम्पराएं, अतीत की सुख-दुःख की समान स्मृतियां और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियां आज भी विद्यमान हैं। इसलिए यह एक राष्ट्र है।

सामाजिक समरसता

जो निजत्व रस बन अन्तस् में समता सह-एकत्व भरे।
वही भावना, बोध, आचरण समरसता का तत्व धरे॥

हमारी सामाजिक विकास यात्रा अत्यन्त प्राचीन है। युगों-युगों से चली आ रही इस व्यवस्था में समय-समय पर कुछ व्यावहारिक परिवर्तन भी आना स्वाभाविक है। यह जीवन्त परम्परा का लक्षण है। परिवर्तनों के साथ-साथ कभी-कभी इनमें कुछ दोष भी आना अस्वाभाविक नहीं। ये ही कुरीतियाँ हैं।

सामाजिक कुरीतियाँ मूल तत्त्व को ठीक से न समझ पाने के कारण उत्पन्न होती हैं। कुछ कुरीतियाँ एक निश्चित कालखण्ड में उत्पन्न व प्रभावी होती हैं किन्तु विशेष परिस्थितियों में बनी कोई आपात व्यवस्था उन परिस्थितियों के सामान्य हो जाने पर भी व्यवहार में बनी रहने से कुरीति बन जाती है। कुछ कुरीतियाँ लम्बे समय तक मूल्यों के क्षरण या अपनी पहचान को भूलने से जन्म लेती हैं, धीरे-धीरे पनपती हैं और सम्पूर्ण समाज के बड़े भाग में जड़ जमा लेती हैं। इनका उन्मूलन अधिक कठिन हो जाता है क्योंकि वे समाज के लोक-व्यवहार में ऐसे घुल-मिल जाती हैं कि यह कुरीति है, ऐसा आभास भी नहीं होता है। आपके लिए कुछ विचारणीय बातें इस प्रकार हैं –

१. सांस्कृतिक बोध एवं गौरव का विस्मरण :

किसी भी जीवन्त समाज के लिए अपनी संस्कृति, उसके बोधक तत्त्व, आचार-विचार को भूल जाना एक बड़ा घातक दोष है। वर्तमान समय में यह दोष स्पष्ट दिखाई देता है। यह सत्य एवं सकारात्मक गुण होते हुए भी कि हमारी संस्कृति सर्व-समावेशी है, बहुत उदार है, यदि हम परकीय सभ्यता को इतना ओढ़ लें, इतना अपनाने लगें कि स्व-संस्कृति की मूल्यवत्ता को ही खो दें तो यह सांस्कृतिक आत्महत्या जैसा ही है। जिस संस्कृति के आधार पर हम विश्वगुरु का गौरव धारण करते हैं वह अपने समाज में जीवित ही न दिखे तो इससे घातक बात और क्या होगी?

२. भाषायी स्वाभिमान :

हमारे राष्ट्र में अनेक समृद्ध भाषाएँ हैं, अनेक उप-भाषाएँ, बोलियाँ, लोक भाषाएँ हैं। संस्कृत भाषा अत्यन्त प्राचीन, वैज्ञानिक एवं विकसित भाषा है। हमारे सारे प्राचीन वाङ्मय में प्रायः यही प्रयुक्त हुई है। इसे भूल कर हम विदेशी भाषाओं में व्यवहार करने को अपना गौरव व प्रगति का सूचक मानने लगे हैं। इससे हम विदेशी उपलब्धियों को ही श्रेष्ठतम मानने लगे हैं। इसी कारण अपनी विशेषताओं व उत्तमोत्तम उपलब्धियों से वंचित रहने का अपना मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

३. पन्थ व मत का मूल हेतु न जानना :

धर्म, मानव मात्र के लिए सदाचार की संहिता है। मनुष्यों के लिए संस्कारित जीवन पद्धति है। धर्म के इन्हीं मूल्यों को आचरित करने के लिए देश-काल-परिस्थिति व रुचियों के अनुसार समय-समय पर विविध पन्थों, मतों, संप्रदायों का जन्म हुआ। उनके प्रवर्तक महापुरुषों ने धर्म को तत्कालीन परिस्थिति व सामाजिक दशा के अनुकूल समझाया और उनके अनुयायियों ने उसे स्वीकारा। इस प्रकार अनेक मत, सम्प्रदाय बने लेकिन कालांतर में वे परस्पर विरोधी बनने लगे। 'हमारा ही मार्ग सही है, शेष सन्मार्ग नहीं है, इसलिए सबको हमारे पन्थ पर ही चलना चाहिए', ऐसे जड़ विचारों से कट्टरता ने जन्म लिया और समाज संगठित न रहकर मत-पन्थ-सम्प्रदायों के टुकड़ों में बंट कर पारस्परिक शत्रुता और द्वेष से ग्रसित हुआ। भारतीय होने के बजाय पन्थ-जाति को हम अपनी पहचान बताने लगे।

४. अतार्किक मान्यताओं का प्रचार :

हिन्दू धर्म वैज्ञानिक धर्म है। इसके आचार-विचार, नियम, सिद्धान्त वैज्ञानिकता आधारित हैं। उन वैज्ञानिक तर्कसिद्ध आचारों के स्थान पर बिना समझे अनेक चमत्कार, रूढ़ियाँ, मान्यताएँ प्रचलित हो गई। इनके प्रभाव से धर्म के मूल मर्म से शून्य आडम्बरों, पाखण्डों एवं अन्धभक्ति का उदय हुआ और समाज धर्म के इस छद्म स्वरूप को अपनाते हुए पतन की ओर बढ़ा।

५. कुटुम्ब व्यवस्था का विघटन :

आधुनिक युग में भारतीय समाज की सबसे बड़ी क्षति कुटुम्ब व्यवस्था का विघटन है। भारतीय परिवार संस्था विश्व की सर्वोत्तम व्यवस्था है। जन्म के बाद व्यक्ति, परिवार के माध्यम से ही सामाजिक होने का प्रथम अनुभव लेता है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से संयुक्त परिवार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनमें अनेक समस्याओं का समाधान सहजता और पारस्परिक स्नेह एवं सहयोग से होता है। मनुष्य संयुक्त परिवार में अधिकारों से अधिक कर्त्तव्यों का पालन करना सीखता है जो सच्चे नागरिक की प्रमुख पहचान है। संयुक्त परिवारों के विघटन से उत्पन्न एकल परिवार की जीवन पद्धति आधुनिक भारतीय समाज में एक भीषण चुनौती है।

६. अस्पृश्यता :

कर्म आधारित शास्त्रोक्त वर्ण व्यवस्था को जन्म आधारित रूढ़ि के रूप में आचरित करके बहुत बड़ी कुरीति को हमने जन्म दिया है। प्राचीन शास्त्रों में हिन्दू समाज में कहीं भी अस्पृश्यता, छुआछूत को स्थान न था लेकिन छोटी जाति, बड़ी जाति, इसे मत छुओ, उसे ऊँचा-इसे नीचा मानो जैसी बुराई ने सामाजिक विघटन एवं पारस्परिक द्वेष व मानापमान को जन्म दिया और जातिवाद समाज में एक भीषण बुराई बनकर छा गया। इसके निवारण के लिए महापुरुष व सामाजिक संगठन प्रयत्नशील हैं। हमें स्वयं अपनी मनासिकता बदलनी होगी कि जन्म से कोई ऊँचा या नीचा नहीं हो सकता।

समरसता में समाधान है :

सामाजिक बुराइयों की जड़ मानव-मानव में ऊँच-नीच का भेदभाव है। एक ही परमात्मा और भारतमाता की सन्तानों में आपस में असमानता का कारण उनकी जाति बने, यह मान्यता ही अतार्किक है। भारतीय संस्कृति में मानवमात्र को जीवन की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ प्राप्त करने का अवसर व अधिकार समान रूप से है। वर्ण व्यवस्था को जातिगत आधार से जोड़कर हिन्दू समाज को तोड़ने का कुत्सित षड्यंत्र है अस्पृश्यता। इस दोष का निवारण समरसता की भावना का विकास ही है। जब तक समाज के प्रत्येक मानव का मानव से हार्दिक अपनत्व एवं समानता का भाव न होगा, समाज एकरस नहीं कहलाएगा। अपनी योग्यता बढ़ाते हुए कोई भी मनुष्य किसी भी उच्चतम प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है। शेष समाज उसके इस कार्य में सहृदयता से सहायता करे और उसे किसी भी प्रकार से हीन समझकर भेदभाव न करे, यही समरस भाव है।

समरसता ऊपरी, दिखावटी, बाह्य समानता को नहीं कहते। यह अन्तर्मन से उत्पन्न आत्मीय स्नेह, ममता का भाव है। यह उत्पन्न होने पर बाह्य आचरण अपने आप बदल जाता है। जहाँ भेद है वहाँ भय रहता है। जो भेदभाव नहीं रखता वह स्वयं भयभीत नहीं होता और किसी को उससे भय नहीं होता। जो भयरहित है वही आनंदित होता है। अनेक सन्तों, महापुरुषों, समाज सुधारकों, सामाजिक संगठनों ने भारतीय संस्कृति के इस अनुपम वैशिष्ट्य को सिद्ध किया है और समाज में समरसता की स्थापना की है। इन प्रयासों में हमारा सक्रिय योगदान वास्तविक समाज धर्म का पालन होगा।

शिक्षा

शिक्षा कहती है- ''मैं सत्ता की दासी नहीं हूँ, कानून की किंकरी नहीं हूँ, विज्ञान की सखी नहीं हूँ, अर्थशास्त्र की बांदी नहीं हूँ। मैं तो धर्म का पुनरागमन हूँ। मानसशास्त्र और समाजशास्त्र मेरे दो चरण हैं। कला और कारीगरी मेरे हाथ हैं। विज्ञान मेरा मस्तिष्क है। धर्म मेरा हृदय है। निरीक्षण और तर्क मेरी आँखें हैं। इतिहास मेरे कान हैं। स्वातंत्र्य मेरा श्वास है। उत्साह और उद्योग मेरे फेफड़े हैं। धैर्य मेरा व्रत है। श्रद्धा मेरा चैतन्य है। ऐसी मैं जगदम्बा हूँ। जगद्धात्री हूँ। मेरा उपासक कभी किसी का मोहताज नहीं रहेगा। उसकी सभी कामनायें मेरी कृपा से तृप्त हो जायेंगी।

- काका कालेलकर

३. हमारी भारतीय संस्कृति

Hkkjrh; lLÑfr ekuo thou e mu vkLFkkvk ,o ufrd fu;ek ij cy nrh g tk ekuo dk dr0; &vdr0; d le>u dh vUrnf"V nu e l{ke gA Hkkjrh; lLÑfr }kjk ifrikfnr iFk ij pyu l vkRe&ifj"dkj vo';Hkkoh gft ld QyLo:i ekuo ije in rd ikIr dj ldrk gA Hkkjrh; lLÑfr u ufrd ,o vkè;kfRed Kku }kjk ekuo d vkfRed mRFkku dk fpjUru dky l gh egÙofn;k gA

संस्कारों का महत्त्व

मनुष्य को ईश्वर ने उदात्त गुणों से परिपूर्ण किया है। सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी होने के कारण उसमें उच्चतम शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक गुण हैं। प्रत्येक गुण की जड़ हमारे मन में है। ये जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। इन्हें ही संस्कार कहते हैं। संस्कार दैनिक जीवन की वह प्रक्रिया है, जिसे अपनाकर मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है। शिक्षा के साथ संस्कारों का महत्त्व निर्विवाद है। बिना संस्कारों के शिक्षा अधूरी है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था – ''शिक्षा मात्र सूचनाओं का संग्रह नहीं है जो ठूँस-ठूँस कर हमारे मस्तिष्क में भरी जाए। हमें जीवन निर्माण करने वाली संस्कारयुक्त शिक्षा की परम आवश्यकता है। ''

जीवनमूल्यों के रूप में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६/७२)

धैर्य, क्षमा, दुष्प्रवृत्तियों का दमन, किसी की वस्तु न लेना, शुद्धता, इन्द्रियसंयम, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अक्रोध, ये धर्म के दस लक्षण हैं। यदि मनुष्य इन गुणों को अपने जीवन में अपना ले तो वह सुसंस्कृत एवं दैवीसम्पदा से युक्त हो जाता है।

श्रीरामचरितमानस प्रसंग

श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में मानस रोग मुक्ति

मानव का मन अनेक प्रकार के अच्छे भावों को ग्रहण करता है। कई बार उसमें अनेक विकार भी आ जाते हैं। ये दोष उसके लिए रोग के समान ही हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में ऐसे विकारों की शारीरिक रोगों से तुलना करते हुए कुछ मानस रोग कहे हैं –

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥

हे तात! अब मानस रोग सुनिए, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब मूल नाम को जाना।।

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जाएँ) तो दु:खदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं; उनके नाम कौन जानता है? (अर्थात् वे अपार हैं)।

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।

ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेंघा आदि रोग हैं), पराये सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षय (टी.बी.) है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है।

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी।।

अहंकार अत्यन्त दु:ख देने वाला डमरूआ (गाँठ का) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसों का) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी (मलेरिया) हैं।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेक बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ?

दो॰ – एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।

किसी एक रोग के कारण ही मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं। ये जीवन को निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में जीव समाधि (शान्ति) को कैसे प्राप्त करे?

श्रीमद्भगवद्गीता

यह घोषणा करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि मानव के सभी धर्मों में गीता अत्यंत मौलिक कृति है। इसकी अवधारणा ही उदात्त है, इसकी तर्कपद्धति, इसकी शैली अद्वितीय है। – लॉर्ड वारेन हेस्टिंग्ज (ब्रिटेन)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय –
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।२/२३।।

अर्थात् जैसे मनुष्य फटे-पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये (वस्त्रों को) धारण करता है, वैसे ही, जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये (शरीरों को) प्राप्त होता है।

जीवनचक्र की सच्चाई जन्म-मरण अटल –

जन्मचक्र के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण की घोषणा :

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥२/२७॥

अर्थात् – जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इसे बिना उपायवाले विषय में तू शोक करने योग्य नहीं है।

जन्म-मृत्यु सम्बन्धित यह घोषणा हमारी सोच को परिमार्जित करती है। साथ ही, श्लोक का उत्तरार्द्ध बहुत उत्तम सीख है– जो हमारे अधिकार क्षेत्र में है ही नहीं उसके विषय में दु:खी होने से कुछ लाभ नहीं। यह बात जन्मचक्र के अतिरिक्त भी जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर प्रभावी सिद्ध होगी। बहुधा, किसी भी कार्य के कार्यान्वयन या समस्या के समाधान के दौरान हमारा ध्यान 'न प्राप्त अधिकार' की ओर अधिक जाता है। फलस्वरूप, प्राप्त अधिकार से जितनी समस्या सुलझ सकती थी वह भी रह जाती है। हमारा कर्तव्य, प्राप्त अधिकार तक ही सीमित समझना चाहिए।

परिवर्तन ही पक्का –

जीवन-चक्र से सम्बन्धित भगवान् का यह सतर्कतामूलक कथन हमारी आँखें खोल देता है –

आब्रह्मभुवनाल्लोका: पुनरावर्तिनोऽर्जुन॥८/१६॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं अर्थात् जिनमें जाकर पुन: संसार में आना पड़ता है। इससे हमें मनुष्य जीवन की तुच्छता का आभास होता है। जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति का अवसर मानव के लिए ही है।

आश्चर्य है कि इस पल-पल परिवर्तनशील जगत में हम स्थायित्व की खोज में उलझे रहते हैं। यह परिवर्तनशील प्रक्रिया इतनी अनूठी है कि इसमें कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि १००% पुनर्चक्रण/पुन:प्रयोज्य के सिद्धान्त पर चल रही है। आज का भौतिक विज्ञान मानता ही है कि 'ऊर्जा को न तो नष्ट किया जा सकता है और न ही इसे उत्पन्न किया जा सकता है, ऊर्जा का केवल रूपान्तरण किया जा सकता है'। हाँ, ऊर्जा का सञ्चयन सीमित अवधि के लिए अवश्य सम्भव है। अत: विधि के इस विधान को हमें स्वीकार करना चाहिए कि इस ब्रह्माण्ड में यदि कुछ निश्चित है तो वह है 'परिवर्तन'।

आवागमन नियमन –

नियति के निम्नलिखित नियम को समझ लेना चाहिए :-

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥९/२१॥

वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोग कर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में लौटते हैं। इस प्रकार (स्वर्ग के साधन रूप) तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म का आश्रय लेने वाले (और) भोगों की कामना वाले पुरुष बार-बार आवागमन करते हैं अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर वापस मृत्युलोक (पृथ्वीलोक) में आते हैं।

आवागमन के दुश्चक्र से कैसे बच सकते हैं –

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते । ८/१६ (उत्तरार्द्ध)।।

अर्थात् हे कुन्तिपुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता।

हम गीता का स्वाध्याय कर इस सम्बन्ध में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी परम्पराओं के वैज्ञानिक आधार

सनातन धर्म किसी रूढ़िवादिता या कट्टरपंथी विचारधारा का नाम नहीं बल्कि यह मानव सभ्यता के उत्थान और प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण का एकमेव माध्यम है। अन्नपूर्णा देवी का पूजन अन्न के प्रति एवं परिश्रमी किसान के प्रति सम्मान भाव व उसे संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से है। हमारे सामान्य रीति-रिवाज हों, धार्मिक अनुष्ठान हों या कोई संस्कार विधि हो, सबके पीछे एक वैज्ञानिक कारण है। इसीलिए सनातन धर्म शाश्वत एवं प्रासंगिक है। विज्ञान और धर्म के इसी गहन सम्बन्ध में कुछ तथ्यों को हम इस शीर्षक में समझेंगे।

प्रश्न- तुलसी के पत्तों को दाँतों से क्यों नहीं चबाना चाहिए?

उत्तर – जनश्रुति है कि तुलसी, भगवान् विष्णु की पत्नी हैं इसलिए दाँतों से चबाकर नहीं खाना चाहिए। वनस्पति वैज्ञानिकों ने खोज में पाया कि तुलसी के पत्तों में पारा (Mercury) होता है। कच्चा पारा यदि दाँतों में लग जाये तो दाँतों का क्षरण हो सकता है इसलिए तुलसी के पत्तों को दाँतों से न चबाकर सीधे जीभ से निगलना चाहिए।

प्रश्न- हिन्दू धर्म में श्राद्ध क्यों करते हैं?

उत्तर – जो श्रद्धा से किया जाये वह श्राद्ध है। पितर यज्ञ या श्राद्ध के विधि-विधान का शास्त्रों में वर्णन किया गया है। श्राद्ध शब्द कर्मवाचक है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार श्रद्धापूर्वक और यथाविधि पितरों की तृप्ति के उद्देश्य से किया गया कर्म, दान एवं समर्पण श्राद्ध कहलाता है।

श्राद्ध प्रक्रिया में अनेक कर्मों के साथ-साथ हवन करते हुए वातावरण को शुद्ध किया जाता है। श्राद्ध कर्म के अनेक कर्मों से छोटे-बड़े जीव-जन्तु भी तृप्त होते हैं। इनमें जल शुद्धि, वायु शुद्धि तथा वृक्षों का संरक्षण एवं सम्वर्द्धन, पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण निवारण भी है।

प्रश्न- मन्दिर में परिक्रमा क्यों करते हैं?

उत्तर – मन्दिर ऐसे स्थान पर स्थित होते हैं जहाँ उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के चुम्बकीय और विद्युतीय बलों के कारण सकारात्मक ऊर्जा भरपूर मात्रा में होती है। मन्दिर में मुख्यमूर्ति बीच में स्थापित की जाती है उस स्थान के नीचे वैदिक मन्त्रों से लिखी ताँबे आदि धातु की पट्टिकाएँ रखी जाती हैं। ताँबा धरती के चुम्बकीय बल को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसलिए जब कोई नियमित रूप से मन्दिर में जाकर परिक्रमा करता है तो इसी चुम्बकीय प्रभाव के कारण शरीर की नकारात्मक ऊर्जा धीरे-धीरे सकारात्मक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है।

प्रश्न - मन्त्रों की शक्ति में विश्वास क्यों करते हैं?

उत्तर- मन्त्र में निहित बीजाक्षरों में उच्चारित ध्वनियों से शक्तिशाली विद्युत् तरंगें उत्पन्न होती हैं जो चमत्कारी प्रभाव डालती हैं। भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न शक्ति रूप हैं। मन्त्र एक साधना है जो मानव की सोई हुई चेतना को, सुषुप्त शक्तियों को सक्रिय कर देता है। मन्त्रों में अनेक प्रकार की शक्तियाँ निहित होती हैं जिसके वैज्ञानिक

प्रभाव तो हैं ही, अनेक दैवीय शक्तियों का अनुग्रह भी प्राप्त किया जा सकता है। मन्त्रों की शक्ति से नकारात्मक ऊर्जा सकारात्मक ऊर्जा में बदल जाती है।

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब

सिख गुरु-परम्परा के पाँचवें गुरु श्री गुरु अर्जनदेव जी की पन्द्रह वर्ष की संकलन एवं सम्पादन रूपी तपस्या के फलस्वरूप १४३० पृष्ठों का विशाल आदिग्रन्थ ही कालान्तर में साझे गुरु के रूप में स्थापित हुआ। हरमन्दर साहिब में श्री बाबा बुड्ढा जी द्वारा इसे अत्यन्त सम्मान और समारोहपूर्वक स्थापित किया गया और वे ही प्रथम ग्रन्थी (पढ़ने वाले) भी थे। दशमेश गुरु गोविन्द सिंह जी ने इसे अपने बाद देहरूप गुरु परम्परा के स्थान पर तत्त्वरूप गुरु मानने का आदेश दिया, 'सब सिक्खन को हुकुम है गुरु मानियो ग्रन्थ।'

श्री गुरुग्रन्थ साहिब

गुरु अर्जन देव जी ने धार्मिक समता एवं समन्वय का उद्देश्य सामने रखते हुए पहले चार गुरुओं – गुरु नानकदेव जी, गुरु अंगददेव जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जी तथा स्वयं की वाणी के साथ समकालीन तथा पूर्ववर्ती तीस सन्तों की चुनी हुई वाणी को इस ग्रन्थ में सम्मिलित किया। बाद में इसमें श्रीगुरु तेगबहादुर जी और गुरु गोविन्द सिंह जी की वाणी भी सम्मिलित कर ली गई।

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब गुरुओं की जीवनी या इतिहास का ग्रन्थ नहीं है। इसमें मात्र एक परमसत्ता और व्यावहारिक जीवन युक्ति का वर्णन है। इसकी भाषा गुरुमुखी है तथा सभी रचनाएँ पद्यमय, संगीतबद्ध और गेय है। इसमें ३१ शास्त्रीय रागों का प्रयोग हुआ है।

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब राष्ट्रीय एकसूत्रता का अनुपम उदाहरण है। गुरु अर्जुनदेव ने इसे ईश्वरीय वाणी का वह विशाल सागर बनाया जिसमें महाराष्ट्र के नामदेव और परमानन्द, गुजरात के त्रिलोचन, दक्षिण के रामानन्द, पश्चिम बंगाल के जयदेव, राजस्थान के धन्ना, पश्चिमी सीमान्त के शेख फरीद और सिन्ध के सदना की वाणियाँ हैं। धार्मिक कट्टरता, जाति-वर्ण आदि के भेदभावों से भरे उस युग में इस ग्रन्थ में जुलाहे कबीर, चर्म सम्बन्धित कार्य करने वाले रविदास, कसाई सदना, वैश्य त्रिलोचन, राजपूत पीपा, जाट धन्ना, ब्राह्मण सूरदास, जयदेव, परमानन्द आदि ही नहीं मुसलमान शेख फरीद भी एक साथ उपस्थित हैं। ये सभी जन्म से अलग वर्ण व प्रान्त के होकर भी ईश्वरीय सत्ता का गुणगान करने वाले आध्यात्मिक पुरुष थे। इस प्रकार सामाजिक समरसता का अनुपम उदाहरण है श्री गुरुग्रन्थ साहिब।

४. हमारी परिवार व्यवस्था

ifjokjk dh ijEijk l lLÑfr èkkjk lnk cgh g]
Hkkjr dh bl J"B;oLFkk t lh txe dgh ugh gA
;gk jDr lEcUèk gekj Hkko lèkkjl l Hkhx]
viukiu bruk g ek dh xknh t lh ldy egh gA

भारतीय परिवार व्यवस्था

नीतिपूर्वक धनार्जन और उसका उपयोग एक कला है। इसकी जानकारी सभी के लिए आवश्यक है! शास्त्र हमारे जीवन को संयमित करके जीवन जीने की कला सिखाते हैं।

प्रश्न-१ भारतीय परिवारों में बचत करने के पीछे की क्या अवधारणा है?

उत्तर- मानव जीवन अनिश्चित होता है इसलिए भविष्य के योगक्षेम व सुख के लिए थोड़ा बहुत धन संग्रह करना उचित होता है। यही बात पुण्य के लिए भी लागू होती है। कालिदास कहते हैं "आदानम् हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव" (सज्जन बादलों की भाँति होते हैं वह दूसरों को दान देने के लिए ही संचय करते हैं।) इसी के साथ -

दानाय लक्ष्मी: सुकृताय विद्या चिंता परब्रह्म विनिश्चयाय
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोके तिलकस्य एव।

(धन होता है दूसरों को दान करने हेतु, विद्या होती है अच्छे काम करने हेतु, चिंतन आत्मसाक्षात्कार करने हेतु, वाणी दूसरों पर उपकार के लिए, इन गुणों से युक्त मनुष्य तीनों लोकों के लिए तिलक के समान होता है।)

अर्थात् धन का धर्म के कार्यों के लिए प्रयोग होना चाहिए।

प्रश्न-२ हमारे परिवारों में समय-समय पर दान देने की पुण्य परम्परा है, इसके क्या लाभ हैं?

उत्तर- दान में ऐसी वस्तु देनी होती है जो दूसरों के पास नहीं है और उनको उसकी आवश्यकता है।

वृथा वृष्टि: समुद्रेषु, वृथा तृप्तस्य भोजनम्।
वृथा दानं समर्थस्य, वृथा दीप: दिवापि च।

अर्थात्- समुद्र में वर्षा, पेट भरे हुए व्यक्ति को दिया भोजन, समर्थ व्यक्ति को दिया दान और दिन में दीपक जलाना व्यर्थ होता है। इसलिए वहीं दान देना चाहिए जहाँ किसी की आवश्यकताओं की पूर्ति होती हो। कुछ विशेष अवसरों पर दान अवश्य करना चाहिए। दान करते समय बासी, बिगड़ी, टूटी-फूटी, फटी-पुरानी वस्तु-वस्त्र आदि देना सर्वथा अनुचित है। किसी भी वस्तु का दान कर सकते हैं। अन्नदान, विद्यादान, आरोग्यदान, धन-दान, वस्त्र-दान आदि के रूप में दान का वर्गीकरण कर सकते हैं। दान से मिलने वाली आत्म-संतुष्टि ही विशेष है। दान करने से पुण्य मिलता है, धन्यता होती है और कृतार्थता रहती है। यह दूसरे की नहीं बल्कि हमारी उन्नति में सहयोगी होता है।

प्रश्न-३ हमारे परिवारों में कौन-कौन से धर्म ग्रन्थ होने चाहिए ?

उत्तर - वृन्दावन शोध संस्थान का ध्येय वाक्य है- **ग्रन्थ परमात्मा के विग्रह हैं।** इस कथन से ग्रन्थों के महत्त्व को

समझा जा सकता है। सद्ग्रन्थों से जीवन जीने की कला सहज और सरल ढंग से सीखी जा सकती है। सन्त प्रेमानन्द जी के अनुसार – ''शास्त्रसम्मत वाणी, शास्त्रसम्मत व्यवहार और शास्त्रसम्मत कार्य, हर व्यक्ति को करने चाहिए।'' इसलिए हमारे परिवारों में अपनी आस्था के अनुसार कोई कोई धर्मग्रन्थ जैसे त्रिपिटिक, श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब, तिरुक्कुरल, तुकाराम गाथा, ज्ञानेश्वरी, रामचरितमानस, श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकि रामायण, वेद, उपनिषद्, पुराण और जैन ग्रन्थ आदि रहने चाहिए। धर्म ग्रन्थों/शास्त्रों को सम्मानपूर्वक यथोचित ढंग से रखने व पढ़ने की व्यवस्था परिवार में होनी चाहिए।

प्रश्न-४ क्या आपके घर में भाव चित्र हैं? यदि हाँ तो वह चित्र किनके हैं?

उत्तर – चित्र केवल चित्ताकर्षक नहीं, संस्कारात्मक भी होते हैं। इसलिए महापुरुषों, विदुषियों, वीरांगनाओं और देवों के भाव चित्र घर में लगाने से उनके गुणों को अंगीकार करने की प्रवृत्ति बनती है। भाव चित्रों का भली-भांति चयन करके उद्देश्य के अनुकूल लगाना चाहिए। स्वयं के चित्र लगाना श्रेयस्कर नहीं है। प्राकृतिक दृश्यों, पशु-पक्षियों, लोक संस्कृति का परिचय कराने वाली वस्तु विशेष या वास्तु विशेष के चित्रों को लगाना अच्छा रहता है। चित्रों के दर्शन से हमारे ऊपर क्या संस्कार होंगे, यह विचार करना आवश्यक है। भारतमाता का चित्र भी घर में प्रमुख स्थान पर होना चाहिए। भारतमाता के चित्र को स्वयं अपने जीवन-पुष्प से सजाकर अपने कार्य-दीप से उसकी आरती उतारने की योजना व चिन्तन करना चाहिए। चित्रों को समय पर साफ करना, यदि कोई खराबी है तो तुरन्त ठीक करना, मालाओं से सुसज्जित करना चाहिए। संस्कार प्रदाता ॐकार भी प्रमुख स्थान पर लगाना चाहिए। इसके ध्यान और उच्चारण से अन्तःकरण की दृढ़ता बढ़ती है। मन एकाग्र होता है और बुद्धि तीव्र होती है। सकारात्मकता का प्रभाव परिवार में सदा बना रहता है। हमारे घर में कुल देवता या देवी का चित्र, उसकी मर्यादापूर्ण, व्यवस्थित पूजा-अर्चना बहुत आवश्यक है।

प्रश्न-५ बड़ों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?

उत्तर– अपने माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची, भैया-भाभी जैसे बड़ों के साथ आदरपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उनके सामने पैरों पर पैर रखकर या पैर फैला कर नहीं बैठना चाहिए। परिवार में बड़ों के द्वारा किए जाने वाले सभी कार्यों को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। यदि बड़े कोई श्रम का कार्य कर रहे हैं तब उन्हें उसे काम से मुक्त कर यथासम्भव स्वयं ही उस कार्य को करना चाहिए। बड़ों के सोते समय, पूजा के समय, भोजन के समय कोई ऐसा व्यवहार न करें जिससे उन्हें मानसिक कष्ट हो। परिवार में किसी भी कार्य को करने के बाद उसका वर्णन आत्म-प्रशंसा या उलाहने के रूप में नहीं करना चाहिए। जब बड़े बात करते हैं तो उनकी बात को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए और प्राप्त निर्देशों का पालन करना चाहिए। बड़ों से बात करते समय विनम्रता और भाषा की मर्यादा का विशेषतः ध्यान रखना चाहिए। संक्षेप में कहें तो हमारे व्यवहार से परिवार के किसी भी सदस्य को मन, वचन या कर्म से कष्ट नहीं होना चाहिए।

जीवन की दिशा और दृष्टि प्रदान करने की साधनास्थली हमारे परिवार हैं। इन्हें धर्मग्रन्थों, शास्त्रों और भाव चित्रों से सुसज्जित, समृद्ध करने से हमारा जीवन श्रेष्ठ बनेगा।

सद्‌गुण विकास

वसुधैव कुटुम्बकम्

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

अर्थ- यह मेरा अपना है और वह दूसरों का है इस तरह की बात संकुचित मन वाले लोग करते हैं। उदार हृदय वाले लोगों के लिए तो सम्पूर्ण धरती ही अपना परिवार है। भारतवर्ष की संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव प्राचीन काल से ही रहा है। इसी को अनुसरण कर पूरे विश्व मे ग्लोबलाइजेशन का भाव आया है। हमारे सभी ऋषि-मुनियों तथा विद्वानों ने सदा विश्व के कल्याण हेतु ही कार्य किए हैं। हमें भी उनका अनुसरण कर जगती के कल्याण हेतु कुछ करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

सृजनशीलता -

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रारम्भ से ही सृजनशीलता का विकास करना महत्त्वपूर्ण ध्येय रहा है। अनेक भारतीय मनीषियों ने अपने सृजनशील व्यक्तित्व से विश्व को आलोकित किया है। कपिल, कणाद, सुश्रुत, चरक, भास्कराचार्य, वराहमिहिर, नागार्जुन, भरद्वाज, आर्यभट्ट, वेंकटरमण, रामानुज जैसे भारतीय विद्वानों ने अपनी अपनी सृजनशीलता से विश्व को नई दिशा दिखाई है। आज भी व्यापार, अन्तरिक्ष, चिकित्सा, सूचना प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी आदि क्षेत्रों में भारत की सृजनशीलता विश्वविख्यात है। हमें भी इस परम्परा को आगे बढ़ाने हेतु नवाचार के क्षेत्र में बढ़-चढ़कर काम करने चाहिए।

बोध चतुष्टय -

जिम्मेदार नागरिक होने का अर्थ है हमें अपने दायित्वों के प्रति गम्भीर होना चाहिए। हमें चार प्रकार के दायित्वों के लिए हमेशा सजग रहने की आवश्यकता है –

१. **परिवार बोध** - जिस परिवार के सदस्यों ने हमें इस संसार में लाने से लेकर विभिन्न प्रकार से संस्कारित किया है, निश्चित रूप से उनकी भावनाओं का ध्यान रखकर हमें कार्य करना चाहिए।
२. **समाज बोध** - समाज के प्रति हमारी जिम्मेदारी किसी ऋण से कम नहीं है। अतः समाज के कल्याणार्थ सदा सर्वदा कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए।
३. **राष्ट्र बोध** - देश हमें देता है सब कुछ, हम भी तो कुछ देना सीखें, के भाव से भरकर यदि आवश्यकता पड़े तो दधीचि की भांति अपना शरीर भी समर्पण करने का भाव रखना चाहिए।
४. **संस्कृति बोध**- अपनी संस्कृति को ध्यान में रखकर सभी प्रकार के आचरण तथा कार्य करना ही संस्कृति बोध है। भारतीय महापुरुषों की यह सामान्य विशेषता रही है। हमें भी इस कड़ी को क्रमशः आगे बढ़ाना है।

शब्द भण्डार

किसी भी भाषा का ज्ञान व समृद्धि उसके शब्द भण्डार पर निर्भर करती है। भाषा शब्द भण्डार से विकसित व परिमार्जित होती है। हिन्दी भाषा ने विभिन्न स्त्रोतों से शब्द ग्रहण कर अपना शब्द भण्डार समृद्ध किया है। भाषा की इस विकास यात्रा में भारतीय भाषाओं से हिन्दी ने शब्द ग्रहण किए हैं, साथ ही विदेशी भाषाओं से भी। भारतीय भाषा का एक तीसरा रूप भी मिलता है जिसमें किसी शब्द का आधा रूप भारतीय भाषा का होता है और आधा रूप विदेशी भाषा

का। भारतीय भाषाओं में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से शब्द ग्रहण करते हुए हिन्दी भाषा ने अपना शब्दभण्डार बढ़ाया है।

आधुनिक युग में प्रवेश करते समय हिन्दी भाषा ने भारतीय भाषाओं के शब्दों में विदेशी भाषाओं को भी सम्मिलित करके अपना नया रूप विकसित कर लिया है जिसे भाषा का मिश्र रूप कहा जाता है। हिन्दी की शब्द परम्परा में समाहित हो चुके ऐसे शब्द रूपों को देखा जा सकता है। हिन्दी भाषा में विभिन्न स्त्रोतों से शब्द आए हैं। इन स्त्रोतों का वर्णन इस प्रकार है –

क) अन्य भाषाएँ (भारतीय, भारतेतर, प्राचीन, नवीन भाषा)

ख) शब्द नवनिर्माण

ग) हिन्दी की अपनी बोलियाँ

(१) तत्सम शब्द– इसका शाब्दिक अर्थ है तत्+सम अर्थात् संस्कृत के समान। संस्कृत से अनेक शब्द हिन्दी में आए एवं इसके भाषा के शब्द भण्डार को सुदृढ़ किया। जैसे– दधि, वधू, अश्रु आदि।

(२) अर्धतत्सम शब्द– जो शब्द तत्सम एवं तद्भव के बीच में हैं। जैसे श्रीकृष्ण तत्सम शब्द है, तो कान्हा, कन्हैया, तद्भव है तथा किशनु, किशन अर्द्धतत्सम है।

(३) तद्भव– वे शब्द जो संस्कृत से उत्पन्न हुए किन्तु बोलचाल में अन्य रूप में विकसित हुए। जैसे कर्म – काम, दुग्ध – दूध, दधि – दही, वधू – बहू या अश्रु – आँसू आदि।

(४) देशज शब्द– वे शब्द जो किसी भाषा – क्षेत्र में बिना किसी आधार के विकसित हो गए है। जैसे– खादी, घपला, ठेठ आदि।

गीत – नव रचना

नव रचना साकार करेंगे
जन-जन में विश्वास भरेंगे
ऋषि मुनियों का देश, हो सुखमय परिवेश ।।ध्रु०।।

स्वाभिमान जागा है, जागी समरसता की धारा
शुभ परिवर्तन निश्चित होगा, है संकल्प हमारा
नगर ग्राम वन गिरि में गूँजे, संस्कृति का संदेश
हो सुखमय परिवेश .....।।१।।

वसुधा है परिवार हमारा, धरती सबकी माता।
एक अलौकिक अभिनव सृष्टि, से है सबका नाता।
दृष्टि हो एकात्म सदा ही, नहीं राग और द्वेष
हो सुखमय परिवेश ..... ।।२।।

जीवन के हर क्षेत्र में अपना, तंत्र पुनः विकसाएँ
जगती तल पर भरत देश की, महाशक्ति प्रकटाएँ
जग जननी का होगा फिर से, मंगलमय अभिषेक
हो सुखमय .....।।३।।

आई.एन.एस.वागीर

अग्नि-५ मिसाइल

भारत : उभरती महाशक्ति

कबीर दोहावली

गुरु पारस को अंतरो, जानत हैं सब सन्त ।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महन्त ।।
दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप ।
जहाँ क्षमा तहाँ धर्म है, जहाँ दया तहाँ आप ।।
कबीर गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अवास ।
काल परौं भुँई लोटना, ऊपर जामै घास ।।
हाथी चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर डुराय ।
लोग कहैं सुख भोगवे, सीधे दोजख जाय ।।

स्वदेशी विचार अभियान

स्वदेशी की भावना हमारे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन मूल्यों को सही दिशा देने का माध्यम है। स्वदेशी आन्दोलन स्वदेश निर्मित वस्तुओं के उत्पादन एवं प्रयोग का आग्रह मात्र नहीं है वरन् वह आधार है जिसमें स्वदेशी-संस्कृति, स्वदेशी जीवन-मूल्य, स्वदेशी भाषा, स्वदेशी आचार-विचार, स्वदेशी स्वातन्त्र्य, आर्थिक स्वावलम्बनयुक्त भारत का निर्माण होना है।

याद करें -

१. ढाका की मलमल, कोहिनूर हीरा, नालन्दा विश्वविद्यालय-ये भारत के गौरवशाली अतीत की याद दिलाते हैं।
२. विशाल मन्दिर भवन, उनमें लगे सोने, हीरे-जवाहरात, उनकी वास्तुकला हमारे विकास के मापदण्ड थे।
३. दशमलव पद्धति का आविष्कार भारतीय गणितज्ञों ने ही किया। गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त भी न्यूटन से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषियों ने खोज निकाला था।
४. अजन्ता-एलोरा की गुफाओं के भित्ति-चित्रों में प्रयोग किया गया रंग भारत के रसायनशास्त्र के विकसित रूप को प्रकट करता है।
५. धातु विज्ञान के उच्च स्वरूप को दर्शाता है कुतुबमीनार के पास स्थापित जंग न लगने वाला लौह स्तम्भ।
६. कृषि और उद्योग के क्षेत्र में हुई भौतिक समृद्धि, जिसकी विदेशी यात्रियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाले कृषि आधारित लघु एवं कुटीर उद्योग व्यवस्था का आधार था।
७. समाजशास्त्र, योगशास्त्र और अध्यात्म में तो हमारी विरासत अद्वितीय एवं अमूल्य है।

लौह स्तम्भ,
कुतुब मीनार (दिल्ली)

नालन्दा के ध्वंसाशेष

५. भारतीय ज्ञान परम्परा

vxj dkbe>l iN fd fo'o d Kku] 'kfDr] lUnjrk] ikÑfrd n'; vkj lEink d vkèkkj ij Lox dgk g\ rk e dgxk fd og Hkkjr e gA Hkkjr d vkdk'k d uhp tk Hkkjrh; Kku mRiUu gvk] mlu ekuo thou vkj vè;kRe dh x<re leL;kvk dk gy iLrr fd;k gA fo'o dh ;ukuh] jkeu] lefVd] ;gnh bu lHkh tkfr;k u eu"; thou vkj ekuorkd ckje lPpk Kku Hkkjr l gh ikIr fd;k gA** &eDleyj

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा

गुरुकुलों या विद्यापीठों की शिक्षा का एक प्रमुख वैशिष्ट्य उनका स्वायत्त होना था। सम्पूर्ण शिक्षा शिक्षक के अधीन थी। चाहे प्राथमिक शाला का प्रधानाध्यापक हो या विश्वविद्यालय का कुलपति, वे सब स्वायत्त थे। शिक्षा में राज्य की ओर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता था। वे सहयोग एवं संरक्षण अवश्य देते थे। शिक्षा व शिक्षाकेन्द्र पूर्ण स्वायत्त थे। उस समय की कुलपति अथवा कुलगुरु संज्ञा संस्थाप्रधान के लिए थी। 'कुल' संज्ञा संख्यावाचक भी है। एक कुल अर्थात् दस हजार की संख्या। इसलिए दस हजार विद्यार्थियों की शिक्षा, उनके आवास व भोजन की व्यवस्था करने में सक्षम कुलपति कहलाता था। ऐसे श्रेष्ठ विद्यापीठों का आक्रमणकारियों ने नाश कर दिया, फिर भी १८वीं शताब्दी में प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा के ५ लाख केन्द्र भारत में चलते थे। भारत में शिक्षा वैदिक काल से अनवरत एवं व्यवस्थित रूप से चलती आई है।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा लव-कुश को रामायण का अध्ययन

पूर्व में हमने ईसा पूर्व ४०० से ईस्वी सन १२०० तक के नालन्दा, काञ्ची, वल्लभी और ओदन्तपुरी विद्यापीठों की जानकारी प्राप्त की थी। अब हम ईस्वी सन १२०० से लेकर सन् १८०० तक के अर्थात् अंग्रेजों के हमारे देश में आने तक जो विद्यापीठ चल रहे थे, उनका परिचय प्राप्त करेंगे –

वल्लभी विद्यापीठ –

काठियावाड़ के काला नामक स्थान के निकट स्थित इस विद्यापीठ का कार्यकाल ४७५–७७५ ई. तक रहा। वल्लभी के स्नातकों का सम्मान नालन्दा के समान था।

यह जैन धर्म का प्रमुख शिक्षा केन्द्र था। ई.सन् ५०३ में श्वेताम्बर पंथ के धर्मग्रन्थों को वल्लभी में देवर्धिगणि के नेतृत्व में आयोजित धर्म परिषद् में पुनर्जीवित किया गया था। वल्लभी की इस सभा में जैनधर्म के ८४ ग्रन्थों को मान्यता दी गई, जिनमें ४१ सूत्र, ३० प्रकीर्ण, १२ नियुक्ति और १ महाभाष्य का समावेश था। इस विद्यापीठ में कुल ७२ विषयों

का पठन होता था (राजशेखर सूरी के प्रबन्ध कोश में इसकी सूची दी गई है।) इस सूची में वर्तमान विश्वविद्यालयों के लगभग सभी विषयों का समावेश हो जाता है। ह्वेन-त्सांग ने वल्लभी नगरी (७वीं शताब्दी) की समृद्धि का वर्णन किया है। इत्सिंग ने उल्लेख किया है कि वल्लभी में भी नालन्दा के समान उच्च शिक्षा दी जाती थी।

कथासरित्सागर के अनुसार काशी में पंडित वसुदत्त ने अपने सोलह वर्षीय पुत्र विष्णुदत्त को पढ़ने हेतु यहाँ भेजा था। वैदिक धर्म के लिए जो स्थान काशी का था, वही स्थान जैनधर्म के लिए तीन शताब्दियों तक वल्लभी का था।

ओदन्तपुरी महाविहार -

यह बंगाल के नवद्वीप के समीप महाविहार था। नालन्दा और विक्रमशिला की तुलना में छोटा, परन्तु आवासीय विश्वविद्यालय था। चरित्र एवं अध्ययन का सर्वाधिक आग्रह इस महाविहार में रहता था, अतः यहाँ महान आचार्यों की परम्परा बनीं।

विक्रमशिला विद्यापीठ -

राजा धर्मपाल ने उत्तरी मगध में गंगातट पर इस विद्यापीठ की स्थापना की। ईसा की ८वीं से १२वीं शताब्दी (४०० वर्षों तक) यह विद्यापीठ विद्यादान का कार्य करता रहा। नालन्दा की तरह यहाँ भी अध्ययन की बहुत अच्छी व्यवस्था थी। यहाँ के कुलपति अतीश का सम्मान राजा से भी अधिक था।

विक्रमशिला विद्यापीठ

यह बौद्ध धर्म की शिक्षा का केन्द्र था। इसके चारों ओर किले के समान दुर्भेद्य दीवार थी। विश्वविद्यालय के प्रमुख द्वार पर 'द्वारपंडित' नियुक्त थे। ये सभी अपने विषय के विशेषज्ञ होते थे। सुपात्र को ही प्रवेश देते थे। यहाँ के पाठ्य विषय नालन्दा से कम थे । व्याकरण, तर्क, दर्शन, तंत्र तथा कर्मकाण्ड अध्ययन के प्रमुख विषय थे। कालान्तर में तंत्र विद्या की प्रधानता हो गई। फलस्वरूप अनेक भ्रष्टाचरण धार्मिक आचारों में सम्मिलित हो गये। ४०० वर्षों तक विद्यादान का अविरत कार्य करने वाले इस विद्यापीठ का १२०३ ई. में बख्तियार खिलजी के आक्रमण से विनाश हुआ।

जगद्दला विद्यापीठ -

पालवंश के राजा रामपाल ने इसकी स्थापना की थी। इसका समय ई. सन् १०७८ से ११३० तक रहा। गंगा व करतोया नदी के संगम पर, वरेन्द्र नामक स्थान के पास रामावती नगर में यह स्थित था। यहाँ अनगिनत पाण्डुलिपियाँ थीं। उनमें से अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ कैंब्रिज के संग्रहालय में अभी भी उपलब्ध हैं। इस विद्यापीठ ने तिब्बती संस्कृति का विकास किया था।

मिथिला विद्यापीठ –

राजा जनक के समय मिथिला उपनिषद ज्ञान का प्रसिद्ध केन्द्र था। इस विद्यापीठ का समय बारहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक रहा। शलाका परीक्षा इसी विद्यापीठ ने प्रारम्भ की थी। अनगिनत विद्वानों द्वारा ग्रन्थों की रचना तथा संस्कृत साहित्य का केन्द्र यह विद्यापीठ था।

नवद्वीप –

गंगा व जलांगी नदी के संगम पर बसा है नवद्वीप। इस विद्यापीठ का समय १४५० से १७०० ई॰ तक रहा। वाद-विवाद में निपुणता और शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करना इसकी अन्तिम परीक्षा होती थी। विद्यापीठ के छात्र रघुनाथ शिरोमणि ने अकबर के दरबार में दिग्विजय प्राप्त की थी।

नदिया के राजा लक्ष्मणसेन के अमात्य 'हलायुध' ने ब्राह्मण सर्वस्व, स्मृति सर्वस्व, मीमांसा सर्वस्व और न्याय सर्वस्व ग्रन्थों की रचना की थी। इस विद्यापीठ के संस्थापक वासुदेव सार्वभौम थे। इन्होंने मिथिला के आचार्य पक्षधर का शिष्यत्व ग्रहण किया और शलाका परीक्षा में १ के स्थान पर १०० पृष्ठ सुना दिये थे। इन्होंने तत्वचिन्तामणि एवं न्यायकुसुमांजलि ग्रन्थों को मुखोद्गत कर लिया था। मधुर कोमलकान्त पदावली के प्रणेता और गीत गोविन्द के लेखक जयदेव, पवनदूत के रचयिता धोमी, आचार्य गोवर्धन और स्मृति विवेक के प्रणेता शूलपाणि भी यहीं के आचार्य थे। प्रो. कोवेल (ई.स. १८६७) के वृतान्त में लिखा है – नवद्वीप विद्यापीठ की पाण्डित्य परम्परा १९वीं शताब्दी तक चली आ रही थी। लगभग ११९७ में बख्तियार खिलजी ने आक्रमण किया, परिणामस्वरूप नवद्वीप मुस्लिम आधिपत्य में आ गया और इसका पाण्डित्य विलुप्त हो गया।

पर्यावरण एवं प्रकृति

हमारे पूर्वज दूरद्रष्टा थे। वे जानते थे कि केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्राणी जगत इस प्रकृति एवं पर्यावरण पर निर्भर है। इसलिए आदिकाल से भारतीय इनके प्रति उपकार का भाव रखते हुए इनका रक्षण एवं संवर्द्धन करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र भारत ही वह देश है, जिसने प्रकृति को माता माना। पर्यावरण के घटक – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, जिन्हें हम पञ्चमहाभूत कहते हैं, को हमने देवता माना। अथर्ववेद के मन्त्रद्रष्टाओं ने 'पृथ्वी सूक्त' में इस पृथ्वी को माता मानकर उसके साथ अपना नाता जोड़ा – ''माताभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः'' अर्थात् यह भूमि मेरी माँ है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसी प्रकार जल देवता, अग्नि देवता, वायु देवता आदि कहा गया।

पञ्चमहाभूतों को हमने माता या देवता क्यों माना? ये तो प्राणी भी नहीं हैं, स्थूल भौतिक पदार्थ मात्र हैं। इसका बड़ा सीधा सा उत्तर है, इनके बिना हमारा जीवित रहना ही सम्भव नहीं है। इस सृष्टि में प्राणी नहीं रहेंगे तो कोई विशेष अन्तर नहीं आएगा, किन्तु पञ्चमहाभूत नहीं रहेंगे तो प्राणी जीवन का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। ये पञ्चमहाभूत किस रूप में हमारे लिए उपकारक हैं? विचार करने पर हमें स्वतः उत्तर प्राप्त हो जायेगा। हमें जन्म देने वाली जननी तो हमें एक-दो वर्ष तक ही अपना दूध पिलाकर बड़ा करती है, उसके बाद तो हम इसी धरती माता पर उत्पन्न अन्न, फल खाकर, इसका जल पीकर, इस पर बहने वाली हवा से प्राण वायु लेकर और इसकी गोदी में खेलकर बड़े होते हैं। यह धरती ही आजीवन हमारा भरण-पोषण व रक्षण करती है। एक माँ का दायित्व निभाती है, इसीलिए हम इसे धरती माता कहते हैं।

एकात्म मानव दर्शन

एकात्म मानव दर्शन के आधार पर व्यष्टि से परमेष्ठी तक के विकास का विचार तथा पुरुषार्थ चतुष्टय के विषय में हम जान चुके हैं। अब हम पण्डित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा बताई हुई जीवन की अखण्ड मण्डलाकार रचना को समझेंगे।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय प्रखर राष्ट्रभक्त थे। उन्होंने राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों का परिपूर्ण विचार हमें दिया। उनका यह दर्शन केवल मानव दर्शन न होकर परिपूर्ण एकात्मक दर्शन है।

एकात्म जीवन की संकेन्द्री रचना को नीचे दी गई दो वृत्ताकार आकृतियों से समझेंगे –

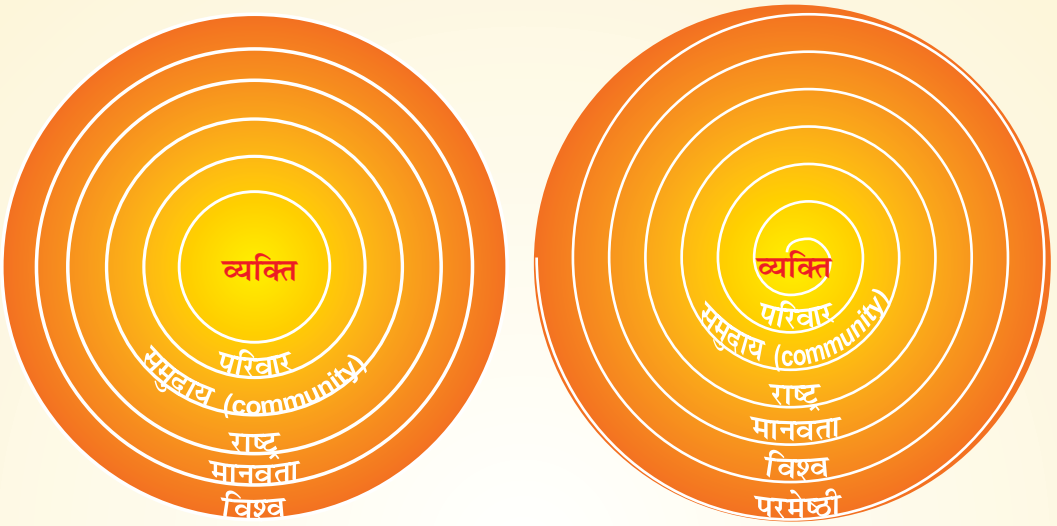

पाश्चात्य रचना

भारतीय रचना
(अखण्ड मण्डलाकार जीवन रचना)

जीवन के सम्बन्ध में पाश्चात्य व भारतीय दृष्टि में मूलभूत अन्तर को हम दो रेखाचित्रों के माध्यम से समझ सकते हैं। प्रथम चित्र में व्यक्ति को केन्द्र में रखकर बढ़ती हुई त्रिज्याओं के मण्डल रचे गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर उन्होंने भी परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता और विश्व का विचार किया है। पाश्चात्य विचार में सभी मण्डल क्रमशः बड़े होते गए हैं परन्तु सभी मण्डल एक दूसरे से अलग हैं, उनमें कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं है। दूसरे चित्र में भारतीय चिन्तन व्यक्त हुआ है। इसमें प्रत्येक मण्डल अपने आगे व पीछे के मण्डल से जुड़ा हुआ है। इसका भी केन्द्र बिन्दु व्यक्ति ही है। किन्तु वह क्रमशः परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता और विश्व मण्डल के साथ परस्पर जुड़े रहते हुए विकसित होता है। पाश्चात्य चिन्तन तो विश्व पर पूर्ण हो जाता है, परन्तु भारतीय चिन्तन में विश्वमण्डल से भी आगे का विचार हुआ है। वह है, परमेष्ठी तत्त्व का मण्डल। परमेष्ठी का मण्डल अपने से पहले के सभी मण्डलों को अपने में समा लेता है और स्वयं भी उनमें व्याप्त रहता है।

इस अखण्ड मण्डलाकार जीवन रचना में एक इकाई में से दूसरी इकाई निकलती है। प्रत्येक इकाई का उत्तरोत्तर विकास होता है। इन इकाइयों के हितों में कोई विरोध नहीं है, इसलिए संघर्ष भी नहीं है। व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता व विश्व एवं परमेष्ठी, अखण्ड मण्डलाकार विकास मार्ग के चरण हैं, इसलिए उनके हित सम्बन्धों में विरोध नहीं परस्पर पूरकता है। यही मानव जीवन का विकास क्रम है।

भारतीय समाज में नारी का स्थान

अध्यात्म प्रधान भारत में नारी शक्ति को उच्च सम्मान दिया गया है। इस देश में साधु-संन्यासी, विद्वान्, बालक-वृद्ध एवं सदगृहस्थ, सभी स्त्री को माता कहकर पुकारते हैं। गृहस्थों के घर में स्त्रियाँ लक्ष्मी स्वरूपा हैं। जिस घर में स्त्री नहीं रहती, वह घर नहीं कहलाता। घर तो गृहिणी से ही बनता है, इसीलिए कहा गया है –

'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।'

अर्थात् घर को घर नहीं कहते, जहाँ गृहिणी रहती है वही घर कहलाता है।

नारी मातृस्वरूपा है -

हमारी संस्कृति सिखाती है 'मातृवत् परदारेषु' अर्थात् पराई स्त्री माँ के समान है। स्त्री- 'गर्भधारणपोषाद्धि ततो माता गरीयसी' अपनी सन्तान को नौ-दस माह तक अपने गर्भ में धारण कर, अनेक कष्ट सह कर उसे जन्म देती है। इसीलिए माता की पदवी सबसे ऊँची है।

इस नैसर्गिक दायित्व की पूर्ति के लिए वह स्वेच्छा से अपनी शारीरिक व मानसिक शक्तियों का सद्व्यय करती है। यदि नारी श्रेष्ठ सन्तति का निर्माण करने की अपनी विशिष्टता को भूल जाये तो इस जगत का विनाश हो जायेगा। माता की महिमा में ही कहा गया है कि पुत्र कपूत हो सकता है परन्तु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती – ''कुपुत्रो जायेत् क्वचदपि कुमाता न भवति''। नारी रूपी माता का सम्मान करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

माता प्रथम गुरु है –

भारतीय संस्कृति में 'माता प्रथमो गुरुः' कहा गया है। सन्तान माँ के गर्भ में भी संस्कारों के माध्यम से सीखती है। उस समय माता जो-जो क्रिया-कलाप करती है, उसके संस्कार सन्तान पर होते हैं। अभिमन्यु एवं अष्टावक्र के उदाहरणों से हम परिचित हैं जिन्होंने माता की कोख में रहते हुए ही सीखा था।

माता की महत्ता को बताने वाला श्लोक कहता है –

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

अर्थात् दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य है। सौ आचार्यों से एक पिता श्रेष्ठ है और हजार पिताओं से अधिक माता का गौरव श्रेष्ठ है।

एक गुरु के रूप में माता मदालसा का जीवन आदर्श उदाहरण है। उन्होंने लोरियाँ सुना-सुना कर अपने राजपुत्रों को श्रेष्ठतम जीवन का मार्ग बताया। ऐसी ही एक लोरी का अंश है –

''शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि संसार मायापरिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मदालसा वाक्यमुवाचपुत्रम्॥''

(हे पुत्र! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, संसार की माया से रहित है। यह संसार स्वप्न मात्र है। उठ, जाग्रत हो, मोहनिद्रा का त्याग कर। तू सच्चिदानन्द आत्मा है।) मदालसा के द्वारा पुत्र को कहे गये ये वाक्य कितनी निर्भयता प्रदान करने वाले हैं।

६. हमारी वैज्ञानिक परम्परा

v.k'kkL=kh d.kkn tl o] Hkj}kt l oekfudA
uke fo'odk egku e; vkfn okLrfon vfHk;kf=dA
lokidj.k fuek.ke;h] Hkkjr ek foKkue;h

भारतीय विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा

विज्ञान के विकास में प्राचीनकाल से ही भारतीयों का योगदान रहा है। अब तक यही प्रचारित किया जाता रहा है कि विज्ञान पाश्चात्य देशों की देन है। शिक्षित भारतीयों में यह प्रचलित धारणा है कि वेद, उपनिषद् व दर्शन आदि भारतीय ग्रन्थों में वर्णित हमारी परम्परागत ज्ञान परम्परा मुख्यत: धर्म से सम्बन्धित है तथा इन ग्रन्थों में विज्ञान का उल्लेख नगण्य है। इस धारणा के प्रचलित होने का कारण है कि विज्ञान से सम्बन्धित सन्दर्भ ऐसे ग्रन्थों में मिलते हैं जिनका मुख्य विषय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नहीं है। इन ग्रन्थों की भाषा संस्कृत, पाली या अन्य शास्त्रीय भाषा होने से इन भाषाओं के विशेषज्ञ ही इसे समझ सकते हैं, जो वैज्ञानिक नहीं हैं।

विज्ञान साधना का श्रीगणेश भारत में वैदिक काल से ही हो गया था। वेदों में गणित, ज्योतिष एवं आयुर्वेद के प्रामाणिक तथ्य हैं। प्राचीन भारत में विज्ञान की विविध विधाओं की प्रगति हुई जिसमें गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, जन्तु-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, सूर्य विज्ञान, यंत्र शिल्प, विमान और वैमानिकी के पर्याप्त तथ्य उपलब्ध हैं।

भारतीय गणित

अंकगणित को समस्त विज्ञान का सिरमौर कहा जाता है। ३००० वर्ष पहले से भारतीयों का यही मत था। वेदांग ज्योतिष में लिखा है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि स्थितिम्॥

जिस प्रकार मयूर की शिखा तथा सर्प की मणि सर्वोपरि शीर्ष स्थान पर स्थित होती हैं उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।

वैदिक काल के भारतीयों की विश्व को सबसे बड़ी देन गणित और संख्याओं का आविष्कार है। विज्ञान की जो प्रगति आज हो रही है उसकी कल्पना भी 'शून्य' के बिना असम्भव है। किसी भी संख्या को शून्यसहित दस अंकों में व्यक्त करना और प्रत्येक अंक को एक निरपेक्ष मान और एक स्थानीयमान देना, गणित शास्त्र और विश्व सभ्यता को भारत का बड़ा योगदान है।

संख्या प्रणाली को अरबवासियों ने भारत से सीखा। ७१२ ई॰ में जब अरबों ने भारत के सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण किया तो वे अपने साथ यहाँ प्रचलित अंकों की जानकारी भी ले गये और उसे अपना लिया। उन्होंने इसे इल्म-उल-हिन्दसा (हिन्द की विद्या) नाम दिया। अरबों से इसे पाश्चात्य देशों ने सीखा।

पाश्चात्य देशों में प्रचलित गिनती लिखने की रीति बहुत जटिल थी। भारतीय अंक प्रणाली सहज और सरल थी। प्रसिद्ध अरबी गणितज्ञ अल-ख्वारिजमी ने ईसा की आठवीं सदी में अरबी भाषा में पहला अंकगणित सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक के गणित भाग को 'इल्म-ए-हिन्द' का नाम दिया गया। कई सौ वर्षों बाद इस अरबी ग्रन्थ का लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। यह अनूदित ग्रन्थ बहुत वर्षों तक यूरोप के विश्वविद्यालयों के पाठ्यग्रन्थ के रूप में प्रचलित रहा। फ्रान्स के महान गणितज्ञ पीयरे लाप्लास ने लिखा है – 'भारत ने ही हमें प्रत्येक संख्या को दस अंकों द्वारा व्यक्त करने की उत्तम प्रणाली दी है। इसकी महत्ता इस बात से सिद्ध होती है कि आर्किमिडीज तथा अपोलोनियम जैसे बुद्धिमान गणितज्ञ भी इस पद्धति को नहीं खोज पाये।'

उस युग के भारतीयों को न केवल संख्याओं और उनकी गणना की जानकारी थी, वरन वे ईसा से हजारों वर्ष से भी अधिक पूर्व वेदांग ज्योतिष में अंकगणित की आधारभूत प्रणालियों से भी भलीभाँति परिचित थे। उन्हें वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल का भी ज्ञान था। नारद पुराण में इसकी विस्तार से चर्चा है। उन्हें भिन्नों और उनके जोड़, घटाना, गुणा, भाग की रीतियों का समुचित ज्ञान था। यथा– ''अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते।'' (का॰शु॰सू॰) अर्थात् $(\frac{१}{२})^{२}=\frac{१}{४}$

इसी प्रकार – ''अध्यर्धपुरुषारज्जुर्द्वौसपादौकरोति'' (का॰शु॰सू॰) अर्थात् $(१+\frac{१}{२})^{२}=२\frac{१}{४}$

पाद अर्थात् चतुर्थ अंश, चौथाई या पाव। भिन्नों को व्यक्त करने के लिए 'भाग' शब्द का प्रयोग किया जाता था, यथा पञ्चम भाग $\frac{१}{५}$, सप्तम भाग $\frac{१}{७}$, दशम भाग $\frac{१}{१०}$ ।

बीजगणित तथा रेखागणित का विकास –

वैदिक ऋषियों द्वारा स्थापित व्यवस्था समस्त मानव ज्ञान-विज्ञान की जननी है। यज्ञों को समुचित पद्धति से करने के लिये ज्योतिष और गणित का विकास हुआ। विभिन्न प्रकार के यज्ञों के लिए रेखागणित के नियम बने। यज्ञवेदियों के लिये विविध ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई की ईंटें काम में लाई जाती थीं। इनकी सही नाप, जोड़ तथा इनकी वेदियों की अनुकूलता के लिये काम में लाये जाने वाले चिह्नों के प्रयोग ने आगे चलकर बीजगणित का रूप ग्रहण किया।

रेखागणित का सही-सही ज्ञान कराने के लिए ईसा से ८०० वर्ष पूर्व 'कल्प' नामक वेदांग में 'शुल्व सूत्रों' की रचना की गई। शुल्व सूत्रों में यज्ञ हेतु विविध वेदियों के निर्माण हेतु आवश्यक स्थापत्यमान दिये गए हैं। वेदी के मापन में प्रयुक्त रस्सी (सुतली) को 'शुल्व' कहा जाता है। सूत्र का अर्थ है जानकारी को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना।

शुल्व सूत्र रचयिता बोधायन प्राचीनतम सूत्रकार हैं। बोधायन के शुल्व सूत्र में तीन अध्याय हैं। आज पाइथागोरस के नाम से सिखाई जाने वाली प्रमेय- 'समकोण त्रिभुज के कर्ण पर निर्मित वर्ग का क्षेत्रफल दो भुजाओं पर निर्मित वर्गों के क्षेत्रफल के योग के समान होता है।' – बोधायन ने पाइथागोरस से बारह-चौदह सौ वर्ष पूर्व ही सिद्ध कर दिया था। कई अन्य भारतीयों ने भी इस थ्योरम (प्रमेय) को पाइथोगोरस से पहले अलग-अलग प्रकार से सिद्ध किया था। शतपथ ब्राह्मण में भी इस प्रमेय के विषय में नियम दिया हुआ है।

बोधायन के शुल्व सूत्र में दी गई प्रमेय है –

दीर्घचतुरस स्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यक्मानी
यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभ्यं करोति।

अर्थात् किसी आयत के कर्ण का क्षेत्रफल उतना ही होता है, जितना उसकी लम्बाई और चौड़ाई का होता है। सरलता से समझ में आता है कि यदि किसी आयत का कर्ण ब स लम्बाई अ ब तथा चौड़ाई अ स हैं तो बोधायन का प्रमेय ब स^{२} = अ ब^{२} + अ स^{२} होता है।

बोधायन ने उक्त प्रसिद्ध प्रमेय के अतिरिक्त कुछ और प्रमेय भी दिये हैं – किसी आयत का कर्ण आयत का समद्विभाजन करता है, आयत के दो कर्ण एक दूसरे का समद्विभाजन करते हैं। समचतुर्भुज के कर्ण एक दूसरे को समकोण पर विभाजित करते हैं, आदि। बोधायन और आपस्तम्ब दोनों ने ही वर्ग के कर्ण और उसकी भुजा का अनुपात बताया जो एकदम सही है।

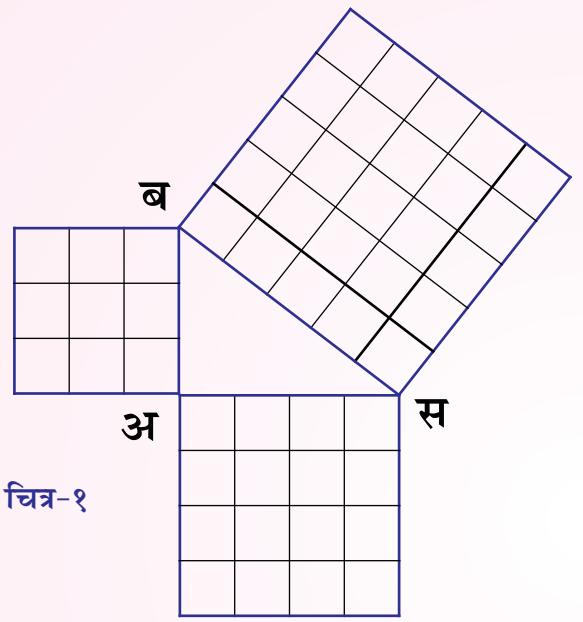

चित्र-१

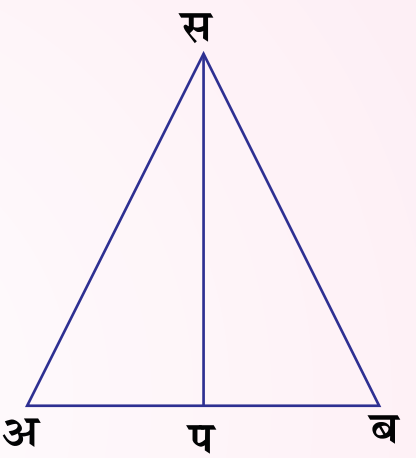

चित्र-२

बोधायन प्रमेय

शुल्व सूत्रों में किसी त्रिकोण के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल का वर्ग बनाना, वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर का वृत्त बनाना, वर्ग के दो गुने, तीन गुने या एक तिहाई क्षेत्रफल के समान क्षेत्रफल का वृत्त बनाना आदि की विधियाँ बताई गई हैं।

भास्कराचार्य की 'लीलावती' में बताया गया है कि किसी वृत्त में बने समचतुर्भुज, पंचभुज, षड्भुज, अष्टभुज आदि की एक भुजा उस वृत के व्यास के एक निश्चित अनुपात में होती है?।

आर्यभट्ट ने त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने का भी सूत्र दिया है। यह सूत्र इस प्रकार है –

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदल कोटी भुजार्धासंवर्गः।

त्रिभुज का क्षेत्रफल उसके लम्ब तथा लम्ब के आधार वाली भुजा के आधे के गुणनफल के बराबर होता है।

उदाहरण (चित्र-२)– अ ब स = $\frac{१}{२}$ अ ब x स प

प्राचीन काल में यज्ञ-वेदियाँ ज्यामिति के सिद्धान्तों पर बनती थीं। मन्दिरों व अन्य भवनों का निर्माण भी इन्हीं पर आधारित होता था।

पाई (π) का भारतीय इतिहास- आर्यभट्ट पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने ४७६ ईस्वी में पाई (π) का परिमित मान निकाला था।

चतुरधिकम् शतमष्टगुणम् द्वाषष्ठिस्तथा सहस्राणाम्

अयुतद्वय निष्कम्भस्य आसन्नो वृत्तपरिणाहः॥ (आर्यभट्टीयम्-१०)

सौ में चार जोड़कर, उसे ८ से गुणा करें और उसमें ६२००० जोड़ें। यह योगफल २०००० व्यास के वृत्त की परिधि का लगभग माप होगा अर्थात् २०००० व्यास के वृत्त की परिधि ६२८३२ होगी। इस प्रकार उनके अनुसार π =३.१४१६ जो ४ दशमलव स्थानों तक सही है।

त्रिकोणमिति – त्रिकोणमिति की संकल्पनाओं, सूत्रों तथा सारणियों का वर्णन 'सूर्य सिद्धान्त' (४०० ईस्वी) वराहमिहिर के 'पञ्च सिद्धान्त' (४०० ईस्वी) तथा ब्रह्मगुप्त के 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' (६३० ईस्वी) में मिलता है।

वैदिक गणित – गोवर्धनपीठ, पुरी के शंकराचार्य पूज्य स्वामी भारती कृष्णतीर्थ जी ने एक गणितीय पद्धति प्रस्तुत की जिसका आधार वेद हैं। उन्होंने १६ मुख्य सूत्र तथा १३ उपसूत्र दिये जिनका अभ्यास करने पर अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, गोलीय त्रिकोणमिति, घन, ज्यामिति, समाकलन, अवकल-कलन इत्यादि के प्रश्न चुटकी में हल किये जा सकते हैं। वैदिक गणित सरल तथा आनन्द देने वाला गणित है।

भारतीय विद्याएँ

पुराण

सर्ग यानि सृष्टि,प्रतिसर्ग यानि प्रलय,वंश, मन्वंतर, और वंशों के चरित्र इन पाँच अंगों से युक्त ग्रन्थ पुराण कहे गए हैं। इनमें सृष्टि ही मुख्य विषय है इसलिए पुराणों को 'सृष्टि का विज्ञान' और 'सृष्टि का इतिहास' कहा जाता है। प्रमुख रूप से वेदव्यास रचित १८ पुराणों का उल्लेख मिलता है जिनके नाम याद करने के लिए यह श्लोक सहायक है-

म द्वयं भ द्वयं चैव ब्र त्रयं व चतुष्टयम्।

अनापलिंगकुस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥

म द्वयं यानि म से नाम आरंभ होने वाले दो पुराण-१ मत्स्य पुराण (१४००० श्लोक) २ मार्कंडेय पुराण (९००० श्लोक), भ से दो-१ भविष्य पुराण(१४५०० श्लोक) २ भागवत पुराण (१८००० श्लोक), ब्र से तीन-१ ब्रह्म पुराण (१३००० श्लोक) २ ब्रह्मवैवर्त पुराण (१८००० श्लोक) ३ ब्रह्माण्ड पुराण (१२२०० श्लोक), व से चार-१ वराह पुराण (२४००० श्लोक) २ वामन पुराण (१०००० श्लोक) ३ वायु पुराण (२४००० श्लोक) ४ विष्णु पुराण (२३००० श्लोक), अ से-अग्नि पुराण (१६००० श्लोक), ना से नारद पुराण (२५००० श्लोक), प से पद्म पुराण (५५००० श्लोक), लिं से लिंग पुराण (११००० श्लोक), ग से गरुड़ पुराण (१८००० श्लोक), कू से कूर्म पुराण (१८००० श्लोक) और स्क से स्कन्द पुराण (८११०० श्लोक)।

इतिहास ग्रन्थों अर्थात् वाल्मीकि रचित रामायण और वेदव्यास रचित महाभारत तथा पुराणों में वेद विज्ञान को ही रोचक कथाओं एवं चरित्रों के माध्यम से समझाया गया है। ये रोचक, जिज्ञासा जगाने वाले और सरल हैं। ये काल भेद से अलग अलग हैं पर जीवन के विविध विषयों को धर्मानुकूलता से समझने में बहुत सहायक हैं।

मीमांसा

मीमांसा का अर्थ है विवेचना यानि गहराई से विचार करना। यह दो भागों में दर्शन ग्रन्थों के रूप में प्राप्त है : (१) पूर्व मीमांसा-इस दर्शन ग्रन्थ में महर्षि जैमिनि द्वारा १२ अध्यायों में २६४२ सूत्रों के माध्यम से वैदिक कर्मकाण्ड को

तार्किक ढंग से स्पष्ट किया है। 'अथातो धर्म जिज्ञासा' पहला सूत्र है। मीमांसा कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्ति का पथ प्रदर्शित करने वाला यह ग्रन्थ जगत और उसके कर्मों को सत्य बताता है। (२) उत्तर मीमांसा-यह उपनिषद् आधारित ग्रन्थ है। छः दर्शनों में यही वेदान्त दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रमुख आधार महर्षि वेदव्यास का 'ब्रह्मसूत्र' है। 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' सूत्र से आरम्भ यह ग्रन्थ केवल ब्रह्म को सत्य बताता है और अद्वैत सिद्धान्त पर आधारित है।

न्याय (तर्क)

यह भी षड्दर्शन में एक है। महर्षि गौतम इसके प्रमुख प्रवर्तक हैं। किसी पदार्थ की सत्यता को परखने के लिए आवश्यक सोलह तत्त्वों को बताने वाले इस ग्रन्थ में प्रथम तत्त्व है प्रमाण। यह चार बताए हैं : (१) प्रत्यक्ष प्रमाण, जो इंद्रियों द्वारा और अन्तर्दृष्टि से दिखाई देता है (२) अनुमान प्रमाण, जो किसी विषय पर गहन सोचने विचारने से प्राप्त हो (३) उपमान प्रमाण, जो किसी उस जैसे विषय या वस्तु के समान होने से तुलना करके प्राप्त हो और (४) शब्द प्रमाण, जो उस विषय में पहले से श्रेष्ठ लोगों द्वारा कही गई बातों के आधार पर निश्चित किया जा सके।

इसी प्रकार यह संशय, प्रयोजन, सिद्धान्त आदि कुल १६ तत्त्वों से न्याय करने की विद्या है। इसे न्याय, तर्क, आन्वीक्षिकी आदि नामों से जाना जाता है।

सभी चौदह विद्याएँ मानव जीवन को सफल, सार्थक,और धर्मानुकूल बनाने वाली हैं।

भारतीय कालगणना

विश्व के महान धर्मों में केवल हिन्दु धर्म ही इस बात को मानता है कि समस्त जगत ही अनगिनत मृत्यु व पुनर्जन्म की घटनाओं से गुजरता है। यही एकमात्र धर्म है जिसका कालक्रम आधुनिक वैज्ञानिक कालगणनाओं से मेल खाता है। इसका कालचक्र हमारे साधारण दिन और रात से लेकर ब्रह्मा के दिन और रात तक है, जिसकी अवधि 864 करोड़ साल है, जो कि सूर्य और पृथ्वी की आयु से ज्यादा है। यह अवधि बिग बैंग से अब तक की अवधि है।

– डॉ॰ कार्ल सेगन (अमेरिकी खगोलविद्)

अब तक हमने भारतीय कालगणना की छोटी-बड़ी सभी इकाइयों की जानकारी की है, जो अत्यन्त विस्मयकारी है। अब हम यह जानेंगे कि हमारी सृष्टि कितनी पुरानी है?

हम कितने वर्ष के हुए हैं?

१. वैवस्वत मन्वन्तर के २७ महायुग बीत चुके हैं।
१ महायुग के ४३,२०,००० (तैंतालीस लाख बीस हजार) वर्ष
२७ महायुग के ४३,२०,००० X २७ = ११,६६,४०,०००
(ग्यारह करोड़ छासठ लाख चालीस हजार) वर्ष।

२. २८ वें महायुग के सतयुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग बीत चुके हैं।
सत्ययुग १७,२८,००० (सत्रह लाख अठाईस हजार) वर्ष
+ त्रेतायुग १२,१६,००० (बारह लाख छियानवे हजार) वर्ष
+ द्वापरयुग के ८,६४,००० वर्ष
= ३८,८८,००० वर्ष (अडतीस लाख अठासी हजार)

अभी कलियुग के ५१२५ वर्ष पूर्ण होकर ५१२६वाँ वर्ष चल रहा है।

३. छह मनवन्तरों के १,८४,०३,२०,००० (एक अरब चौरासी करोड़ तीन लाख बीस हजार) वर्ष

+ छह मन्वन्तरों के संधिकाल के १,२०,९६,००० (एक करोड़ बीस लाख छियानबे हजार) वर्ष

+ सत्ताईस महायुगों के ११,६६,४०,००० (ग्यारह करोड़ छासठ लाख चालीस हजार) वर्ष

+ अठाईसवें महायुग के सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग के ३८,८८,००० (अड़तीस लाख अठासी हजार) वर्ष

+ कलियुग के ५१२५ (पाँच हजार एक सौ चौबीस) वर्ष = कुल १,९७,२९,४९,१२५ (एक अरब सत्तानवें करोड़ उन्तीस लाख उन्चास हजार एक सौ पच्चीस) वर्ष बीत चुके हैं।

अभी हमारी सृष्टि

१,९७,२९,४९,१२६ वर्ष एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख उनचास हजार एक सौ छब्बीस वर्ष की हुई है। (समस्त गणना सन् २०२४ के आधार पर की गई है।)

कालगणना हमारी परम्परागत विद्या है। परन्तु दैनिक व्यवहार में इसका उपयोग आज नहीं हो रहा है। इसलिए हम सब से यह अपेक्षा है –

१. कालगणना से सम्बन्धित अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करें।

२. प्राचीनकाल में यह विद्या जैसी थी वैसी विद्या आज प्राप्त करें।

३. कालगणना के लिए जैसे यन्त्र उस समय थे वैसे यन्त्र आज बनाएँ।

यह सब करने के लिए आपको हमारे प्राचीन ग्रन्थ पढ़ने होंगे। उन पर चिन्तन-मनन करना होगा और अनुसंधान करना पड़ेगा। विपल, पल, घटी, मुहूर्त दर्शाने वाली घड़ी भी आप बना सकते हैं। ऐसी घड़ी हमारी कालगणना को समझने में बहुत उपयोगी होगी। आप यह सब करेंगे ऐसा विश्वास है।

भारतीय ज्योतिष

खगोल विज्ञान और उस पर आधारित ज्योतिष के ज्ञान के आधार पर भारतीय मनीषियों ने प्राचीन काल से ही पंचांग का निर्माण कर लिया था। (१) तिथि (२) वार (३) नक्षत्र (४) करण और (५) योग, इन पाँच अंगों से युक्त गणना पत्री पंचांग कहलाती है। कालान्तर में ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धित कुछ और आवश्यक जानकारी इसी में जोड़ देने से हम आज जो पंचांग का स्वरूप देखते हैं वह बना है। पंचांग की दो पद्धति प्रमुख हैं : (१) सायन, जिसमें नक्षत्रों, राशियों के मूल बिन्दु को गतिमय मानते हैं। (२) निरयन - जिसमें मूल बिन्दु स्थिर है। ये दोनों मान्यताएँ अपने प्रकार से सत्य हैं लेकिन वर्तमान में प्राय: निरयन पद्धति से ही पंचांगों का निर्माण होता है।

पंचांग के तिथि, वार, नक्षत्र – इन तीन अंगों की जानकारी हमें पूर्व में मिली है। थोड़ा परिचय शेष दो अंगों का प्राप्त करते हैं।

करण - यह तिथि का आधा भाग है। सूर्य व चंद्र की गति के दैनिक अन्तर को ६ से भाग देने पर करण की प्राप्ति होती है। बल, बालव, कौलव आदि नामों के ११ करण होते हैं। सामान्यजन को प्राय: इस अंग का उपयोग कम ही पड़ता है।

योग - सूर्य व चन्द्र को मिलकर ८०० कला या १३$\frac{१}{३}$ अंश चलने में लगने वाले समय को योग कहते हैं। सूर्य व

चन्द्रमा की दैनिक गति भी योग कही जाती है। विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान आदि नामों के २७ योग हैं। सामान्य व्यवहार में इसका भी दैनन्दिन उपयोग नहीं किया जाता।

पंचांग के उपरोक्त दो अंग ज्योतिषियों द्वारा विशिष्ट गणनाओं में उपयोगी हैं। व्यवहार में तिथि, वार, नक्षत्र का योग सामान्यजन भी करते हैं। हमें पाँचों अंगों का परिचय होना चाहिए।

राष्ट्रीय पंचांग

अंग्रेजों के प्रभुत्वकाल में हमारे देश में अंग्रेजी कैलेण्डर का प्रयोग व प्रचार बढ़ गया। फलतः अधिक वैज्ञानिक और विस्तृत ज्ञान पर आधारित होने पर भी भारतीय पंचांग (दिनदर्शिका या कैलेण्डर) केवल धार्मिक उपयोग तक सीमित हो गया। यद्यपि लोक में भारतीय तिथि, मास, वार, संवत् आदि प्रचलित रहे पर शासकीय और कार्यालयीन व्यवहार में अंग्रेजी दिनाँक और ईस्वी सन् से कालगणना होने लगी। भारतीयता का गौरव जानने और मानने वाले अनेक विद्वानों ने इस पीड़ा का निवारण करने के उद्देश्य से स्वतंत्र भारत में १९४७ में राष्ट्रीय पंचांग निर्धारित करने के लिए विद्वानों, ज्योतिषियों व वैज्ञानिकों की समिति बनाकर महान वैज्ञानिक डॉ॰ मेघनाद साहा को इसका प्रमुख बनाया। इस समिति ने पाश्चात्य सौर कैलेण्डर व भारतीय चांद्र पंचांग का समन्वय कर –

१. भारतीय राष्ट्रीय पंचांग में शक संवत् को मान्य किया।
२. वर्ष का आरम्भ वसन्त समाप्ति के अगले दिन २२ मार्च से माना गया।
३. वर्ष ३६५ दिन का व अधिक वर्ष (Leap Year) ३६६ दिन का होगा जो शक संवत् में ७८ जोड़ कर ४ से पूर्ण विभाजन होने वाले वर्ष से निश्चित होगा।
४. दिन का आरम्भ रात्रि १२ बजे से और अन्त रात्रि १२ बजे होगा।
५. मास अमावस्या को पूर्ण होंगे।

यह पंचांग अंग्रेजी व भारतीय मान्यताओं का मिश्रण होने से लोक व्यवहार में बहुत प्रचलित नहीं हो सका।

हमें अपनी श्रेष्ठ ज्योतिष परम्परा को समझना व व्यवहार में लाना चाहिए। जब हम भगवान राम व श्रीकृष्ण का जन्म उत्सव भारतीय तिथि चैत्र शुक्ल नवमी व भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को मनाते हैं तो हमारा स्वयं का जन्म भारतीय तिथि से मनाना उचित होगा न?

हम आरम्भ करें स्वयं से! प्रचलित कालगणना न हमारे देश की है न परम्परा की, जिसका वैज्ञानिक आधार भी हमारी कालगणना से कमजोर है और जो हम पर आक्रान्ता बनकर आए लोगों ने लाद दी है। हम स्वतंत्र भारत के नागरिकों को उसे बदलना है तो हमारी कालगणना को बिना किसी झिझक, किन्तु-परन्तु के उसे व्यक्तिगत व्यवहार में लाना होगा और अपना और परिवारीजनों का जन्मदिवस भारतीय तिथि से मनाने से अधिक शुभ प्रयोग नहीं हो सकता है।

७. हमारा गौरवशाली अतीत

fldUnj dx# vjLr ufldUnj l dgk Fkk tc Hkkjr tkvk rk ej fy, ogk l N% oLr, ykuk ftUg vR; r ifo=k ekuk tkrk gA o oLr, & on] Hkxonxhrk] xxk t y] Hkkjrh; xÅ rFkk ;kx dk vè;kid] fgUn ckã.k o vk;ofnd fpfdRld FkhA

वन्देमातरम् की गाथा

राष्ट्रगान राष्ट्रीय संस्कृति के अविच्छेद्य अंग हुआ करते हैं, अतः वे राष्ट्रीय ऐतिह्य से ही उत्सरित होते हैं और उन्हें संजीवन प्राप्त होता है, देशभक्त वीर शहीदों के प्राण-स्पन्दन से। राष्ट्रगान देशवासियों के अन्तःकरण के देश-प्रेम और देशहित जीवन उत्सर्ग की प्रेरक ज्वाला की सहज अभिव्यक्ति होता है। यह बात तत्कालीन नेता उस दिन भूल गये थे। वे यदि फ्रांस के राष्ट्रगान 'मार्सिलेज' आदि का इतिहास जानते होते तो उन्हें यह बात अवश्य समझ में आ जाती कि राष्ट्रगान ऐसा होना चाहिए जिसके श्रवण-मात्र से देशवासियों की धमनियों में खून-खौलने लगे– "Sound of which will make blood tingling in the veins" – Carlyle.

१६ अक्तूबर १९०५ को बंगभंग की योजना लागू होने वाली थी। बंगाल का विभाजन कर भारतीय जनता के बीच विभेद उत्पन्न करने की अंग्रेजों की इस षड्यन्त्रकारी नीति से लोग क्रोध में थे। विरोध प्रदर्शन के लिए यह चर्चा प्रारम्भ होने अर्थात् १९०३ से अब तक लगभग ३००० सभाएँ हुई थीं। किन्तु परिणाम जनमानस के विपरीत ही था। फिर नए सिरे से प्रयास प्रारम्भ हुए। १३ अक्तूबर १९०५ को एक संस्था का निर्माण हुआ- 'वन्देमातरम्' सम्प्रदाय, जिसका उद्देश्य था राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना। श्री मन्मथ कुमार मित्र इसके अध्यक्ष थे। इस संस्था के सदस्य प्रत्येक रविवार को 'वन्देमातरम्' गाते हुए सड़कों पर निकल कर धन एकत्रित करते थे। स्वयं रवीन्द्रनाथजी रविवार के दिन इसमें सम्मिलित होने लगे। हजारों की संख्या में लोग एकत्रित होते थे।

वन्देमातरम् की प्रतिज्ञा

'परमेश्वर, माँ, पिताजी, अभिभावक, नेता और शक्तिदेवता को साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक समिति का कार्य पूर्ण नहीं होता, तब तक कार्यक्षेत्र छोड़ कर मैं नहीं जाऊँगा। मैं माँ, पिताजी, भाई, बहन, प्रपञ्च, घर इत्यादि के महापाश में भी लिप्त नहीं होऊँगा और कोई भी कारण न बताते हुए नेता के दिए हुए केन्द्र में कार्य करूँगा। मुझे सौंपे गये सभी कार्य दृढ़चित्त से, स्थिरता से व गम्भीरता से करूँगा। यदि मैंने इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया तो ब्राह्मण, माता-पिता और देशभक्तों के शाप से मैं जल कर भस्म हो जाऊँगा-'ओम वन्देमातरम्'।

'वन्देमातरम्' मन्त्र को साकार रूप देने एवं उस रूप को भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए बंकिमचन्द्र ने संन्यासी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित 'आनन्दमठ' नामक उपन्यास का सृजन किया जिसमें वन्देमातरम् गीत के रूप में दिया गया था।

वन्देमातरम् खालसा

सैनफ्रान्सिस्को में भारतीय क्रान्तिकारियों ने 'भारत माता संघ' की स्थापना की और वन्देमातरम् खालसा उसका नाम रखा। खालसा - अर्थात् - भारत माता के हाथ में दी हुई तलवार, जो देशधर्म के रक्षण के लिये है।

''वर्तमान में हमारी मातृभू का शरीर हिमालय से कन्याकुमारी तक मरणासन्न अवस्था में है। उसका जीवनरस - चूसा जा रहा है। अत: हे खालसा! जागो! हम कभी पदच्युत न हों। सत्श्री अकाल।''

सैनफ्रान्सिस्को से निकलने वाला यह पत्र भारत में पहुँचता था। शासन ने पोस्ट और टेलिग्राफ जनरल को सूचना दी कि इस तरह के पत्र जब्त कर, केन्द्रीय गुप्तचर विभाग को सौंपे जायें।

१९२० में लाला लाजपतरायजी ने पंजाब अखबारान एंड प्रेस कंपनी लिमिटेड रजिस्टर करवा ली। इसके माध्यम से 'वन्देमातरम्' समाचारपत्र प्रारम्भ किया। इस प्रकार पत्रकारिता क्षेत्र में 'वन्देमातरम्' गीत और लेख जन-जन में समर्पण, सेवा, बलिदान, देशभक्ति का भाव पैदा करता था।

त्रिमूर्ति वन्देमातरम् : हिन्दी में भाव

मेरी माँ सृजन (ब्रह्मा), पालन (विष्णु), संहार (महेश) की त्रयी है। स्रष्टा के रूप में वह हमें जल, फल, वायु, आहार, विश्रामदायिनी ज्योत्स्ना भरी रातें और आनन्दवर्धक पुष्प तथा हरीतिमा प्रदान करती है, नानाविध सुख और वर देती है।

पालनकर्त्री माँ ने हमें विद्या प्रदान की है। धर्मपथ दिखाया है, प्यार भरा हृदय दिया है, सुख-दु:ख के मर्म समझाये हैं, यही माँ सर्वदा हमारे शरीर में प्राण बन कर हमें जीवनशक्ति, प्रभु की भक्ति प्रदान करती है। सर्वत्र माँ की ही छवि दिखाई देती है।

वही दुर्गा बनकर दुर्गति से रक्षा करती है, वही कमला बनकर धनसम्पत्ति प्रदान करती है, वही वाणीरूप धारण कर ज्ञान-विज्ञान सिखाती है। माँ की तुलना किस से करें? उसी से हमें आधार प्राप्त होता है, वही धरणी है, वही भरणी है, उसी के सरल स्मित से सारे सुफल प्राप्त होते हैं।

माँ का एक संहारक रूप भी है। अपनी सन्तति पर जब-जब विपत्ति आती है तो माँ अपने कोटि-कोटि कण्ठ से हुँकारती, कोटि-कोटि हाथों में शस्त्र धारण कर, बहुबल धारिणी बनकर, रिपुदल का विनाश कर, विपत्ति सागर से तार देती है। ऐसी त्रिमूर्तिरूपिणी माँ की वन्दना है - 'वन्देमातरम्'।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणीं।

माँ की सन्तान

आनन्दमठ में 'वन्दे मातरम्' 'सन्तान' सम्प्रदाय का गीत है। मातृभू की यह सन्तान कटिबद्ध है माँ के लिये ...। जब तक मातृभूमि अत्याचारों और कुशासन से, शोषण और अधार्मिकता से मुक्त नहीं हो जाती, तब तक सन्तान के लिये

आवश्यक है कि वह अपना समस्त परिवार, पत्नी और बच्चे, धन-दौलत और खुशियों का परित्याग करें। सब इन्द्रियों, इच्छाओं का पूरी तरह दमन करें और अपने धर्म के लिये शत्रुओं से युद्ध करें, रणक्षेत्र में पीठ दिखाकर न भागें। सन्तानों की व्यक्तिगत जाति कोई भी हो, आयु कितनी भी हो, उनकी जाति एक ही थी - माँ को गुलामी से मुक्त करने वाली 'सन्तान'। उसके लिये सर्वस्व समर्पण करने वाली सन्तान।

राष्ट्रगान राष्ट्र का अन्यतम प्रतीक होता है। प्रथमतः इसका अंगच्छेद करके, द्वितीयतः इसको पदच्युत करके हमने इस पवित्र प्रतीक अर्थात् जननी-जन्मभूमि के प्रति जो जघन्य अपराध किया है, उसका प्रायश्चित करने से ही राष्ट्र का सर्वतोमुखी अभ्युदय होगा। पूरे 'वन्दे मातरम्' को पुनः राष्ट्रगान के पद पर अभिषिक्त करके, जब देश की आबाल-वृद्ध सभी सन्तानें इस मातृस्तोत्र के नित्य गान एवं मनन द्वारा शक्ति, समृद्धि एवं ज्ञान की प्रतीक स्वदेश-माता की वन्दना करते हुए, इन विभूतियों को प्राप्त करने का संकल्प करेंगी, तभी ये हमें प्राप्त होंगी। सुखदा वरदा माता प्रसन्न होकर हमें निश्चित रूप से विश्व को धारण एवं भरण करने योग्य शक्ति, समृद्धि और ज्ञान प्रदान करेगी। हमें भारत के स्वर्णिम भविष्य में अटल विश्वास है, अतः 'वन्दे मातरम्' पुनः प्रतिष्ठित होकर रहेगा।

वीर पुत्रों की अमर ललकार वन्दे मातरम्।
राष्ट्र भक्ति प्रेरणा का गान वन्दे मातरम्॥

भारत का विभाजन : एक त्रासदी

१९४७ का भारत विभाजन एक अत्यन्त दुखद घटना है। सदियों से अपने धार्मिक मतभेदों के बाद भी हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ रहते आए थे। अंग्रेजी शासन के 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुसार अंग्रेजों ने मतभेदों को बढ़ावा देकर मुस्लिमों के प्रति सहानुभूति दिखा कर हिन्दुओं और मुस्लिमों में भेद कर दिया। हिन्दू मुस्लिम में मन मुटाव के परिणामस्वरूप वे एक-दूसरे के लिए बाधाएँ उत्पन्न करने लगे।

विभाजन किसी देश की भूमि का ही नहीं, वहाँ रहने वाले समस्त नागरिकों की भावनाओं का भी होता है। लॉर्ड माउण्टबेटन ने भारत आकर यह अनुभव किया कि कांग्रेस स्वतंत्र भारत और मुस्लिम लीग विभाजन चाहते हैं। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों में समझौता करवाना असम्भव लग रहा था।

महात्मा गाँधी द्वारा विभाजन का विरोध किया गया। इसलिए माउण्टबेटन ने पंडित नेहरू और सरदार पटेल को पाकिस्तान की स्थापना के लिए सहमत करवाया। इन दोनों ने बेगुनाहों की हत्या और साम्प्रदायिक दंगों के डर से पाकिस्तान की माँग मानना सही समझा। दोनों की सहमति प्राप्त करते हुए ३ जून १९४७ को भारत विभाजन की योजना को प्रस्तुत किया गया। खिलाफत आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन समाप्त हो जाने के बाद देश में साम्प्रदायिक दंगे तेजी से बढ़ने लगे। बड़ा उदाहरण केरल का मोपला विद्रोह था। १९२७ में हिन्दू मुस्लिम उपद्रव ने भयानक रूप धारण कर लिया था। अन्तरिम सरकारें इन दंगों को नहीं रोक पाईं। ३० दिसम्बर १९०६ को मुस्लिम लीग का गठन किया गया। मुसलमानों के हितों की रक्षा के नाम पर मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए सीधी कार्यवाही कह कर दंगों का सहारा लिया। इसे रोकने के लिए विभाजन ही एकमात्र उपाय नजर आया।

सन १९३० में मुस्लिम लीग के सभापति मोहम्मद इकबाल ने मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए पृथक मुस्लिम राज्य की स्थापना की माँग की। माउण्टबेटन को लगता था कि साम्प्रदायिक दंगों के कारण स्थिति अनियन्त्रित होती जा रही है। अंग्रेज सरकार ने भारत छोड़ने की तिथि जून १९४८ की जगह १५ अगस्त १९४७ घोषित कर दी। माउण्टबेटन के प्रभाव से भारतीय नेताओं ने विभाजन के प्रस्ताव के साथ कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग की अनुचित माँगों को भी स्वीकार किया। नीतिगत सिद्धान्तों का त्याग कर १९१६ के लखनऊ समझौते में मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व और जनसंख्या के अनुपात से भी अधिक सदस्य व्यवस्थापिका सभाओं में भेजने के अधिकार को स्वीकार किया गया। पंजाब और बंगाल जैसे बड़े और सम्पन्न प्रान्तों का विभाजन विनाशकारी सिद्ध हुआ। विभाजन के बाद भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए जिसमें जान-माल की अपूरणीय क्षति हुई।

अलग देश की माँग करने वाले बहुत सारे लोग पाकिस्तान गए ही नहीं। पाकिस्तान से भारी संख्या में हिन्दुओं का पलायन हुआ। भारत का विभाजन मानव इतिहास की सर्वाधिक त्रासदीपूर्ण घटनाओं में से एक है।

महर्षि अरविन्द के शब्दों में कहें तो धर्म के आधार पर भारत का विभाजन पूर्णतया कृत्रिम है। भारत को पुनः अखण्ड होना ही होगा।

लाचित बरफुकन

भारत ऐसी पावन भूमि है जो प्राचीनकाल से महापुरुषों की जननी रही है। यहाँ समाज सुधारक, देशभक्ति से ओत-प्रोत महापुरुष अवतरित हुए जिन्होंने अपने जप-तप, संस्कारों, अदम्य साहस से प्रेरित आदर्श कृत्यों, विचारों द्वारा मानव समाज का मार्गदर्शन किया। ऐसे ही एक वीर पुरुष थे- लाचित बरफूकन। इनके जन्म के पीछे एक विचित्र घटनाक्रम है। मोमाई तामुली बरबरुआ शाही बगीचों की देखरेख कर रहा था। सहसा किसी नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनकर वह आश्चर्यचकित होकर आवाज की दिशा की ओर बढ़ा। वहाँ एक छोटा शिशु जो मात्र छः मास का ही होगा, एक पेड़ के नीचे गर्म कपड़ों मे लिपटा रो रहा था। मोमाई ने बच्चे को उठा लिया। वह समझ नहीं पा रहा था कि खून से सना हुआ यह जीवित बच्चा किसका होगा? उसे अपने घर ले आया। वह देर से समझा कि हो न हो, यह अवश्य किसी ऐसे पिता का बच्चा है, जो युद्ध में मारा गया है, क्योंकि वह शिशु अपने नहीं, अपितु किसी अन्य के रक्त से सना हुआ है। मोमई तामुली की अपनी कोई सन्तान नहीं थी। अतः ईश्वरीय अनुकम्पा समझकर उसे गोद लेने का निश्चय किया। रक्त से सना हुआ मिला इस कारण बच्चे का नाम 'लाचित' रखा। असमी भाषा में 'ल' का अर्थ 'रक्त' और 'चित' का अर्थ 'सना हुआ' होता है। उस छोटे बच्चे का नामकरण चाहे कैसी भी परिस्थितियों में हुआ हो, परन्तु आगे चलकर यही बच्चा सैकड़ों बार शत्रुओं के रक्त से नहाया। आगे चल कर वह असम के सेनापति लाचित बरफुकन नाम से प्रसिद्ध हुआ। बरफुकन का अर्थ होता है- 'सेनापति'।

भारत पर तब मुगलों का शासन था परन्तु पूर्वोत्तर सीमा पर असम प्राचीन काल से ही सजग प्रहरी के रूप में खड़ा रहा है। तेरहवीं सदी में यहाँ अहोम राजवंश का शासन था। १८२६ की संधि के बाद यह प्रदेश ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में आया।

लाचित अब युवा हो गया था। उसकी वीरोचित शिक्षा-दीक्षा के फलस्वरूप वह शास्त्र व शस्त्र-दोनों में निपुण हो गया था। उसे स्वर्गदेव के ध्वजवाहक का पद सौंपा गया, जो किसी कूटनीतिज्ञ व राजनेता के लिए प्रथम महत्त्वपूर्ण पद होता है। इधर राजा जयध्वज मुगलों के साथ हुई सन्धि से खुश नहीं था। वह चाहता था कि मुगलों पर आक्रमण किया जाए परन्तु प्रधानमंत्री अतन बड़गोहाँई ने उन्हें समझाया कि जब तक हम फौज को पूर्ण संगठित कर पर्याप्त अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा नहीं कर लेते, तब तक मुगलों को हराना सम्भव नहीं हो सकेगा। युद्ध की पूरी तैयारियाँ हो चुकी थी। राजा जयध्वज सिंह बीमार पड़ गए थे। अपनी मृत्युशैय्या पर पड़े-पड़े उन्होंने चक्रध्वज सिंह को उत्तराधिकारी नियुक्त किया और कहा कि जब तक पश्चिमी क्षेत्रों से मुगलों को निकाला नहीं जाएगा मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। दायित्व पाकर चक्रध्वज सिंह ने मातृभूमि पर लगे इस कलंक को मिटाने का आश्वासन दिया और राजा की मृत्यु के बाद वह राजगद्दी पर आसीन हुए।

स्वतंत्रता संग्राम का एक स्फूर्तिपुंज
लाचित बरफुकन (असम)

१६९४ का वह विजयादशमी का दिन था जब मुगलों की सेना बुरी तरह परास्त हुई। गुवाहाटी विजय का स्वप्न संजोने वाला मुगल सेना का सेनापति राजपूत राजा रामसिंह इस करारी पराजय से शिथिल हो गया। बुझे मन से दिल्ली लौटकर वह सोचने लगा कि उस धरती पर ईश्वर की असीम अनुकम्पा है। उस पर विजय पाने का विचार करना भी मूर्खता है। लाचित के इस महापराक्रम से मिली विजय का स्मरण करते हुए असम राज्य में हर साल २४ नवम्बर को लाचित दिवस के रूप में मनाया जाता है।

भारतीय सेना की राष्ट्रीय रक्षा अकादमी (एन.डी.ए.) के सर्वश्रेष्ठ कैडेट को 'लाचित मैडल' से अलंकृत किया जाता है।

भारत की वीरभूमि पर लाचित बरफुकन के शौर्य और साहस की गाथा इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में लिखी मिलेगी।

राजपूताना साम्राज्य का परिचय

राजपूत हिन्दी का शब्द है। यह संस्कृत शब्द राजपुत्र का अपभ्रंश है। प्राचीन ग्रन्थों में राजपूतों के लिए राजपुत्र, राजन्य, बाहुज आदि शब्द मिलते हैं। गिरिनार के १५० ई० के शिलालेख से यौद्धेय राजपूतों का होना सिद्ध होता है। अनेक इतिहासकारों के तर्क एवं शिलालेखों से स्पष्ट हो जाता है कि राजपूत प्राचीन आर्य क्षत्रियों की सन्तान हैं। राजपूतों ने शकों, हूणों से अनेक बार युद्ध किए और उनसे देश, धर्म तथा संस्कृति की रक्षा की।

माई एहड़ा पूत जण जेहड़ा - महाराणा प्रताप

६५० से १५२७ ईस्वी तक राजपूत राज्य का वर्तमान इतिहास कहा जाता है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तरी-पश्चिमी भारत में राजपूतों के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए। इनका राज्य लगभग १००० वर्ष तक चला जिनमें पहले ५०० वर्ष तक वे अच्छी तरह से राज्य करते रहे। बाद में उनको मुस्लिम आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। इसके फलस्वरूप उनके राज्य छिन्न-भिन्न हो गए। मुख्य राजपूत राजाओं में पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द, बप्पा रावल, राणा कुम्भा, राणा संग्रामसिंह तथा राणा प्रताप आदि के नाम शामिल हैं। राजपूतों के दो वंश मुख्य हैं- प्रथम सिसौदिया वंश जिसने मेवाड़ पर राज्य किया तथा द्वितीय चन्देल वंश जिसने बुन्देलखण्ड पर राज्य किया।

प्रार्थना

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पदायोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

(श्रीमद्भागवत १०।१०।३८)

भगवन्! मेरी वाणी आपके गुण-कीर्तन में लगी रहे। मेरे कान आपकी लीलाकथा सुनने में संलग्न रहें। मेरे हाथ आपकी सेवा के कार्य में और मन आपके चरणों के चिन्तन में तत्पर रहे। मेरा मस्तक आपके निवासभूत जगत को नमस्कार करने के लिये झुका रहे और मेरी आँखें आपके स्वरूपभूत संतजनों के दर्शन में निरत रहें।

८. हमारी संस्कृति का विश्व संचार

bjku] frCcr] exkfy;k] epfj;k] phu] tkiku] b.Mk&pkbuk] eyk;k] b.Mksuf'k;k] ckfu;k] fQyhihUl&bu lHkh ns'kks dh lLÑfr] èkeZ vkj lH;rk ij Hkkjr dh vfeV Nki gA

&flfYo;u yoh& bVyh

विश्वव्यापिनी भारतीय संस्कृति

भारत प्राचीन राष्ट्र है। मानव जाति के इतिहास ने जब आँखें खोलीं तो उसने भारत को एक समुन्नत, सुसंस्कृत, सबल एवं समृद्ध राष्ट्र के रूप में देखा। तत्कालीन भारत विश्वगुरु की भूमिका निभाने में सक्षम था। बाह्य आक्रमणों के कारण विश्व को मार्गदर्शन देने की क्षमता का क्रमशः ह्रास हुआ। हमारा तत्त्वज्ञान आज भी प्रासंगिक है।

पाताल देश अमेरिका– मय संस्कृति से पुष्ट अमेरिका में स्थित मैक्सिको को अमेरिका का भारत कहा जाता है। मैक्सिको स्वर्ण और रत्नों की खान है। मय सभ्यता ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में काफी आगे थी। पाण्डवों के राजप्रासाद का निर्माण इसी मय देश के गयास्तु ने किया था। महाभारत में उल्लेख है कि मयासुर अपने देश से रत्न भण्डार पाण्डवों के राजप्रासाद के लिए लाया था। प्राचीन समय में मय देश (मैक्सिको) में भारतीय ज्ञान परम्परा प्रचलित थी। मन्दिर विद्याध्ययन के केन्द्र थे। गुरुजनों की आज्ञा और कठोर अनुशासन में छात्र रहते थे। मन्दिर का प्रबन्ध भी ये छात्र ही करते थे। स्पेनिश आक्रमण सोलहवीं शताब्दी में आरम्भ हुए। उनके पीछे–पीछे ईसाई धर्म प्रचारक (मिशनरी) मैक्सिको पहुँचे। उन्होंने समृद्ध पुस्तकालयों का नाश किया। सहस्त्रों प्राचीन ग्रन्थ जला डाले।

मैक्सिको के ग्रामीण क्षेत्र में अतिथि सेवा आज भी भारतीय परम्परानुसार ही करते हैं। पेरू, ग्वाटेमाला और बोलिविया के लोगों को भी अय्यर वंशजों ने वस्त्रों का प्रयोग, कृषि, केश–विन्यास सिखलाया।

संस्कृति के अवशेष –

दक्षिण और उत्तरी अमेरिका के मध्य होण्डुरस प्रदेश है। इस प्रदेश के जंगल में हाथी पर आरूढ़ राजा की मूर्ति प्राप्त हुई है। हाथी अमेरिका में नहीं पाया जाता। इसी के साथ त्रिमूर्ति देवता के सदृश पाषाण मूर्तियाँ उपलब्ध हुईं। अनेक देव मूर्तियों का प्राप्त होना यह सिद्ध करता है कि अमेरिका में भारतीय संस्कृति एवं परम्परायें समृद्ध रही हैं।

लोग सूर्य तथा वरुण की पूजा करते थे। वर्षा के आरम्भ में सभी ग्रामीणों द्वारा पर्वत पर जाकर पर्वत की पूजा (गोवर्धन पूजा की भाँति) करने की प्रथा है।

गान्धारी का नैहर (मायका) : आज के अफगानिस्तान (उपगणस्थान) का प्राचीन नाम गन्धर्व अथवा गान्धार देश है। महाभारत के धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी इसी गान्धार की राजकन्या थीं और शकुनि मामा गान्धार के राजकुमार।

गान्धार में मुजावनत पर्वत भगवान रुद्र का स्थान माना जाता था। गान्धार के अनेक भागों में शिव, विष्णु, लक्ष्मी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। 'कपिशा' नगर अनेक राजाओं की राजधानी रहा है। यहाँ प्राचीन काल में शैव पन्थ का प्रभाव था। कपिशा के आस–पास शिव–पार्वती की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। काबुल के पास खैरखाने में चकमक पत्थर की सूर्य मूर्ति मिली है। 'गर्देज' के परिसर में छठी शताब्दी की तुन्दिलतनु श्री विनायक की मूर्ति मिली है।

मौर्यकाल में बौद्ध भिक्षुओं का आना प्रारम्भ हुआ। अशोक साम्राज्य का गान्हरि एक अंग ही था। बामियान में पर्वत पर खुदी हुई विशाल बुद्ध मूर्ति थी जो तालिबानियों ने तोड़ दी। आज भी गान्धार (अफगानिस्तान) में भारतीय संस्कृति के पर्याप्त चिह्न हैं। भारतीय संस्कृति ने इस भू-भाग को भी आच्छादित किया हुआ था।

विश्व में गूँजे हमारी भारती,
जन-जन उतारे आरती।
धन्य देश महान्
धन्य हिन्दुस्थान।।

भारत के आयुर्वेद की विश्व को देन

भारत आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों की खान है। पारम्परिक चिकित्सा पद्धति और औषधियों का सदियों से भारत के लोग उपयोग कर रहे हैं। आधुनिकता के दौर में हमारी पारम्परिक पद्धति कुछ समय के लिए लोग भूलने लगे थे। कोरोना के कारण एक बार फिर लोगों ने आयुर्वेद की शरण ली। सिर्फ भारत में ही नहीं, दुनिया भर के लोगों को आयुर्वेद और अन्य भारतीय पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों में विश्वास जगा है। यही कारण है कि विगत तीन वर्षों में करीब ३६ करोड़ किलो जड़ी-बूटियाँ भारत से पूरे विश्व में निर्यात की गई हैं। आयुर्वेदिक उत्पादों के प्रति बढ़ती जागरुकता और स्वस्थ जीवनशैली बनाए रखने के प्रति लोगों का झुकाव आयुर्वेद के विकास में प्रमुख कारक हैं। कोरोना की शुरुआत से लेकर अब तक आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों और उत्पादों के निर्यात का आँकड़ा बढ़ता जा रहा है। आयुष मन्त्रालय के अनुसार २०१९-२० में आयुष मन्त्रालय ने ९.२२ मिलियन किलोग्राम से अधिक आयुष जड़ी-बूटियों और उत्पादों का निर्यात किया। २०२०-२१ में दुनियाभर में १२.५ मिलियन किलोग्राम से अधिक भारतीय जड़ी-बूटियों और आयुर्वेदिक उत्पादों को भेजा गया। महामारी के तेजी से प्रसार से पूरे देश में लॉकडाउन हुआ जिसने व्यापार, बाजार और वाणिज्य के क्षेत्र में एक ठहराव ला दिया। व्यापार के तरीकों को बदलकर रख दिया। आयुर्वेद उद्योग उन गिने-चुने क्षेत्रों में शामिल है जिन्हें वायरस के प्रकोप से लाभ हुआ। आयुर्वेद से इम्यूनिटी बढ़ाने वाले उत्पादों जैसे च्यवनप्राश, गिलोय की गोलियाँ, गिलोयचूर्ण, शहद और अश्वगन्धा की माँग आसमान छू रही है। इसके साथ-साथ तनाव को दूर करने और इम्यूनिटी को मजबूत करने के लिए प्राकृतिक आहार में भी आयुर्वेद की माँग बढ़ी है। आयुर्वेद विश्व में जानी-पहचानी पद्धति बन गई। इसके प्रचार-प्रसार में आयुष मन्त्रालय ने भी कई कदम उठाए हैं। परम्परागत औषधियों को प्रोत्साहन देने के लिए मन्त्रालय ने उपचार और दवाओं के लिए कई देशों के साथ अनेक समझौते किए हैं। आयुष मन्त्रालय ने ३४ देशों में ३८ आयुष सूचना प्रकोष्ठों की स्थापना के लिए सहायता प्रदान की है। आयुर्वेद की दवाओं और नुस्खों की माँग विश्व में बढ़ती जा रही है। यह हमारे किसानों के लिए शुभ संकेत है।

वैदिक गणित

वैदिक गणित की परम्परा को पुनर्जीवित करने का सम्पूर्ण श्रेय गोवर्धनपीठ, पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारती कृष्णतीर्थ को है। संन्यास लेने के बाद उन्होंने वेदशास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया और उसमें छिपे हुए रहस्यों को ढूंढ

निकालने के लिए अनेक वर्ष एकान्त साधना में बिताए। अथर्ववेद और उसके एक परिशिष्ट स्थापत्य उपवेद से उन्होंने ऐसे सोलह सूत्रों और १३ उपसूत्रों की खोज की जो गणित की जटिल से जटिल समस्याओं का सरल, सहज और त्वरित हल प्रस्तुत करते हैं। भारतीय गणितीय अंक ज्ञान पर महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन ने कहा है कि – ''हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं, जिन्होंने हमें गिनना सिखाया, जिसके बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी।'' स्वामी भारती कृष्णतीर्थ रचित ''वैदिक गणित'' नामक ग्रन्थ अद्‌भुत, चमत्कारी एवं क्रान्तिकारी ग्रन्थ है। गणित के प्रश्नों को हल करने का इसमें नितान्त नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में १६ सूत्र १३ उपसूत्रों के आधार पर शीघ्र गणना की विधियाँ प्रस्तुत की गई हैं। आज विश्व के कुछ महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में भी इस विधा को सिखाने का कार्य हो रहा है।

श्रीमज्जगद्‌गुरु-शंकराचार्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी

योग

योग वह प्रक्रिया है जो चेतना के परम सत्य, सत्ता के रहस्य से सम्पर्क स्थापित करती है। यह बोध कि यह समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वर की प्रदीप्ति की अभिव्यक्ति है, उतनी ही जितनी कि उस प्रदीप्ति के समान आप स्वयं की है। साथ ही यह आश्वासन कि 'यह ऐसा ही है', वस्तुएँ चाहे जैसी दिखें; मोटे तौर पर भारत के ज्ञान की यही कुंजी है।

– जोसेफ केम्पबेल (अमेरिका)

योग का सामान्य अर्थ जोड़ मिलाना होता है। पातञ्जल योगसूत्र में कहा गया, **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"**। योग चित्तवृत्ति को नियन्त्रित करने वाला है। "योगः कर्मसु कौशलम्" योग कार्य को कुशलता से करना है। अतः नियमित योग करना हमारे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। योग के आठ अंग हैं इसीलिए इसे अष्टांग योग कहते हैं : (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान (८) समाधि।

आसन – योगशास्त्र में 'आसन' महत्त्वपूर्ण अंग है। सामान्य लोगों को योग का परिचय भी प्रायः आसनों के रूप में ही होता है। सुखपूर्वक, स्थिरता से बैठने का नाम आसन है। शरीर की स्वाभाविक चेष्टा को शिथिल करने व अनन्त परमात्मा में मन के तन्मय होने पर आसन की सिद्धि होती है।

आसनों के अनेक प्रकार हैं। ये प्रकार महर्षि पतञ्जलि द्वारा रचित योग सूत्र में नहीं हैं। यह अष्टांग योग से अलग हैं और प्रकृति के अनेक जड़-चेतन जीवों, उपादानों से ग्रहण किए गए हैं। उनके नाम भी उन्हीं के आधार पर रखे गए जैसे,

साँप की तरह भुजंगासन, वृक्ष की तरह वृक्षासन, मोर की तरह मयूरासन आदि। कुछ आसन शरीर की स्थिति विशेष से नामांकित हैं जैसे उत्तानपादासन, चक्रासन, सर्वांगासन; तो कुछ विशेष अवस्था से नामित हैं जैसे सिद्धासन। आसन अनेक शारीरिक व्याधियों को ठीक करने में उपयोगी हैं। मन को स्थिर करने में तो उनका उपयोग है ही। कुछ शास्त्रज्ञ इन आसनों की संख्या ८४ बताते हैं। आसन योग गुरु के निर्देशानुसार ही करना चाहिए।

प्राणायाम - योग का दूसरा सर्वाधिक प्रसिद्ध अंग प्राणायाम है। पतञ्जलि के अनुसार श्वास-प्रश्वास की गति नियमित करना प्राणायाम है। प्राणायाम की तीन स्थितियाँ हैं (१) अभ्यन्तर यानि श्वास को अन्दर खींचना। इसे पूरक कहते हैं। 'पूरक' का अर्थ है भरना। (२) स्तम्भ का अर्थ है श्वास को स्थिर रखना। इसे कुम्भक कहते हैं। (३) बाह्य का अर्थ है श्वास को बाहर छोड़ना अर्थात् रेचक। योगशास्त्र में सामान्यतः बाह्य कुम्भक अर्थात् श्वास को बाहर छोड़े रखना और अभ्यन्तर कुम्भक अर्थात् श्वास को अन्दर स्थिर रखना, यही दो भेद बताए गए हैं।

धारणा के पश्चात् ध्यान क्रम प्रारम्भ होता है। धारणा के द्वारा चित्तवृत्ति को स्थिर करने की निरन्तर प्रक्रिया या निरन्तरता ध्यान है। इस अवस्था में विचार स्थिर हो जाता है शून्य नहीं होता।

ध्यान - तत्रप्रत्ययैकतानसा ध्यानम् पातञ्जल योगसूत्र ३.२ ।

समाधि - तरेनार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः (३.३१) पा.यो.सू.

जब ध्यान में ध्येय मात्र का ही अनुभव होता है और चित्त को स्वरूप का ज्ञान नहीं रहता तो वह समाधि हो जाता है। धारणा, ध्यान, समाधि में समाधि अंगी और ध्यान–धारणा उसके अंग हैं।

प्राणायाम

भारतीय संगीत की देन

संगीत को कहीं ईश्वर प्राप्ति का साधन माना गया है तो कहीं उसे साक्षात् ईश्वर का पर्याय। इसी कारण संगीत को आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का साधन मानकर उसकी भी उपासना की गई है। यह तथ्य भी सर्वसम्मत है कि ईश्वर सम्बन्धी कोई भी चर्चा तार्किक रूप से नहीं की जा सकती क्योंकि वह केवल मनःस्थिति, संवेदना एवं आस्था का विषय है। इसी कारण संगीत को ईश्वरोपासना हेतु एकाग्रता प्रदान करने का सर्वाधिक सशक्त साधन माना गया है। हमारे आचार्य और महर्षियों ने ध्वनि विज्ञान पर जो शोध किया वह आज भी विश्वशान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

मिल्टन ने 'पैराडाइज लॉस्ट' में लिखा है कि जब ईश्वर ने सृष्टि रची तब उसने पहले बिखरे हुए महाभूतों को संगीत द्वारा एकत्र किया। ७२ वर्षीय लुडविग कैश ६४ वर्षों से पक्षियों के स्वरों का अध्ययन कर रहे हैं। भारतीय संगीतकार

तानसेन, बैजूबावरा का संगीत जड़-चेतन सभी को आकर्षित करता था। दीपक, मल्हार आदि राग चमत्कारिक हैं।

भारतीय संगीत आनन्द का आविर्भाव है। भारतीय दर्शन के सिद्धान्तानुसार आनन्द साक्षात् ईश्वर का स्वरूप है अत: संगीत साध्य भी है और साधन भी। संगीत का परिपाक एवं अभ्युन्नति सदैव दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों से हुई है, जिसका प्रतिफलन प्राचीनकाल से मध्यकाल तक और मध्यकाल से आधुनिककाल तक के संस्कारों में देखा जा सकता है। सर्वेभवन्तु सुखिन: उक्ति को चरितार्थ करने में भारतीय संगीत की अप्रतिम भूमिका है।

जिसको चंवर डुला रहा, ज्ञान और विज्ञान।
संस्कारों का शीश पर, फैला बृहद वितान॥
विविध कला परिचारिका, विद्या सखी सुजान।
अधिष्ठान अध्यात्म का वैदिक धर्म विधान॥
भाषाएँ सब कर रहीं, जिसका गौरव गान।
ममता-पय इसका पिएँ, सब भारत संतान।

सा विद्या या विमुक्तये

'मनुष्य बद्ध है, अज्ञानी है, कुवासनाओं से घिरा हुआ है, परिस्थिति से जकड़ा हुआ है, उसकी आत्मा दब गई है, विकास के लिए उसे अवकाश नहीं मिलता। इन सब बन्धनों से मुक्त करे वही सच्ची शिक्षा है। शरीर को रोग और दुर्बलता से मुक्त करे, बुद्धि को अज्ञान और गलत विचार से मुक्त करे, हाथ-पाँव और कर्मेन्द्रियों को जड़ता से मुक्त करे, मन को लालच, भय और क्षुद्र स्वार्थ जैसी कुवासनाओं से मुक्त करे। पूरे मनुष्य को– मनुष्य समाज को प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजकीय, बौद्धिक आदि सब दायरों से मुक्त करे, रसवृत्ति को विलास से, शक्ति को मद से मुक्त करे वही विद्या, वही शिक्षा है।

''अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव:'' यह वस्तुस्थिति है। उसमें से जो मुक्ति दिलाये वही विद्या है।

- काका कालेलकर

❑❑❑

निवेदन

प्रिय भैया-बहिनों से ...

यह पुस्तक तो आपने पूरी पढ़ ली। पुस्तक केवल पढ़ने और संभाल कर रख लेने के लिए तो नहीं होती आगे विचार करने के लिए यदि हमने उसमें से कुछ नहीं निकाला तो पुस्तक की उपयोगिता क्या हुई? इसलिए, कुछ बातें आपके सोचने एवं करने के लिए ...

यह तो छोटी-सी पुस्तक है। कितना भी बड़ा ग्रन्थ क्यों न हो, उसमें भी विषयवस्तु की सीमा तो रहती ही है। उस पर संस्कृति जैसा व्यापक विषय कुछ पृष्ठों की मर्यादा में कैसे समा सकता है? इसलिए सबसे पहले तो अपने ध्यान में यह आना चाहिए कि यह पुस्तक संस्कृति के कुछ प्रमुख अंगों का परिचय मात्र है, सम्पूर्ण संस्कृति बोध नहीं। कुछ जानकारियाँ एवं तथ्य आपके ध्यान में आ गए, अब उनके विस्तार में जाने का काम तो आपको ही करना है – स्वाध्याय द्वारा, चर्चा द्वारा, चिंतन द्वारा।

दो शब्द प्रयोग में आते हैं – सभ्यता और संस्कृति। प्राय: दोनों को पर्यायवाची समझा जाता है, जबकि दोनों में अनेक अन्तर हैं। सभ्यताएँ बदलती हैं, बनती-बिगड़ती हैं। संस्कृति का आधार स्थायी तथा शाश्वत होता है। सड़क बनाने की एक प्रक्रिया होती है – नाप-जोख की जाती है, निर्माण सामग्री आती है, सरकार या नगर पालिका धन देती है और अभियन्ताओं के मार्गदर्शन-निरीक्षण में श्रमिक सड़क बनाते हैं। इसके विपरीत गाँव में खेतों के बीच से होकर मन्दिर या तालाब तक जाने वाली पगडण्डी कोई बनाता नहीं, चलने वालों के पैरों से स्वयं बन जाती है। सभ्यता सड़क है, संस्कृति पगडण्डी जोकि उसका पालन करने वालों ने स्वयं बना ली है। इसमें सभ्यता का भी अंश होता है, किन्तु पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज-परम्पराओं, मान बिन्दुओं-श्रद्धा केन्द्रों के प्रति समान आस्था समाज को एकजुट करती है। गंगा उत्तर भारत में बहती है किन्तु सुदूर दक्षिण भारत ही नहीं बल्कि विदेशों में भी जा बसे भारतीय मूल के समाज के लिए श्रद्धा का केन्द्र है। संस्कृति का आधार भावात्मक एकात्मता है जो हमें एक-दूसरे से जोड़कर रखती है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत अपनी कविता 'आस्था' में लिखते हैं – "प्रखर बुद्धि से भले सभ्यता हो नव निर्मित, संस्कृति के निर्माण के लिए हृदय चाहिए।"

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो॰ किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं, "संस्कृति संस्कार से बनती है जबकि सभ्यता नागरिकता का रूप है।"

अत: अपने लिए विचार करने का दूसरा विषय है, क्या हम सभ्यता और संस्कृति को अलग-अलग ठीक प्रकार से समझते हैं।

आजकल मंच पर होने वाली प्रस्तुतियों – नृत्य, नाट्य, गायन-वादन, अभिनय को 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' कहा जाता है। यदि उनमें अपने देश की संस्कृति की झलक नहीं है तो वे रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ मात्र हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम तो नहीं।

वीर सावरकर लिखते हैं, ''विश्व रचना परमात्मा द्वारा सम्पन्न हुई है। संस्कृति मानव प्रकृति द्वारा की गई उसकी अनुकृति मात्र है। संस्कृति का सर्वोत्तम रूप प्रकृति और मानव पर मानव की आत्मा की पूर्ण-विजय प्राप्ति ही है।'' अर्थात् अपनी संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं को समझकर और उन्हें जीवन व्यवहार में लाकर हम एक प्रकार से परमात्मा के कार्य का अनुकरण ही कर रहे होते हैं।

देशभर के अनेक विद्वानों ने इस पुस्तक में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जो जानकारी संकलित कर हमारे हाथों में सौंपी है, वह केवल रट लेने और परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए नहीं है। हम इस सूत्र रूप में प्राप्त जानकारियों के आधार पर इस दिशा में और अधिक खोजें-जानें-समझें-समझायें, तभी इस श्रम की सफलता होगी। ज्ञानदायिनी माता सरस्वती हमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान करें, यही प्रार्थना।

– महामंत्री

प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

दूरभाष : ०१७४४-२५१९०३, २७०५१५ मोबाइल/व्हाट्सएप्प : ९८१२५२०३०१

sgp@samskritisansthan.org www.samskritisansthan.com vidyabhartikurukshetra vidyabhartisss YouTube vbsss kkr

प्रकाशन वर्ष : विक्रम संवत् २०८१, युगाब्द ५१२६ (सन् 2024 ई॰)